ISSN-0971-8397

योजना

मई 2011 | विकास को समर्पित मासिक | ₹ 10

हथकरघा एवं हस्तशिल्प

अब उपलब्ध है

वार्षिक संदर्भ ग्रंथ

भारत 2011

देश के विकास की
विश्वसनीय और अद्यतन जानकारी के लिए

- अर्थव्यवस्था
- विज्ञान और तकनीक
- सामाजिक विकास
- राजनीति
- शिक्षा
- कला और संस्कृति

मूल्यः 345 रुपये

अपनी प्रति यहां से खरीदें :

हमारे विक्रय केंद्रः • **नई दिल्ली** (फोन 24365610, 24367260)• **दिल्ली** (फोन 23890205) • **कोलकाता** (फोन 22488030) • **नवी मुम्बई** (फोन 27570686) • **चेन्नई** (फोन 24917673) • **तिरुअनंतपुरम** (फोन 2330650) • **हैदराबाद** (फोन 24605383) • **बेंगलूर** (फोन 25537244) • **पटना** (फोन 2683407) • **लखनऊ** (फोन 2325455) • **गोवाहाटी** (फोन 26656090) • **अहमदाबाद** (फोन 26588669)

प्रतियां प्रमुख पुस्तक केंद्रों में भी उपलब्ध हैं

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:
व्यापार व्यवस्थापक प्रकाशन विभाग,
सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली
फोन. 011–24365610, 24367260, फैक्सः 24365609

ईमेलः dpd@mail.nic.in
dpd@hub.nic.in

वेबसाइटः www.publicationsdivision.nic.in

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

DPDB-H-11/05

योजना

वर्ष : 55 • अंक : 5 • मई 2011 • वैशाख-ज्येष्ठ, शक संवत 1933 • कुल पृष्ठ : 56

प्रधान संपादक
नीता प्रसाद

वरिष्ठ संपादक
राकेशरेणु

संपादक
रेमी कुमारी

संपादकीय कार्यालय

538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23717910, 23096738
टेलीफैक्स : 23359578
ई-मेल : exeed.yojana@gmail.com
yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट : www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in
a) dpd@nic.in
b) dpd@hub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
जे.के. चंद्रा

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा
दूरभाष : 26100207, 26105590
फैक्स : 26175516
ई-मेल : pdjucir_icm@yahoo.co.in

आवरण : **साधना सक्सेना**

इस अंक में

संपादकीय	–	3
ब्रांड खादी का विकास एवं भारतीय कुटीर उद्योगों पर इसका प्रभाव	कुमुद जोशी	4
हस्तशिल्प संभावनाओं को प्रोत्साहन	वनिता विश्वनाथ	7
भारतीय शिल्प प्रौद्योगिकी के युग में	लैला तैयबजी	9
शिल्पी संकुल - बेहतर भविष्य की ओर	तमाल सरकार	13
हथकरघा और हस्तशिल्पियों का स्वास्थ्य और सुरक्षा	नूपुर बहल	17
खादी क्षेत्र में सुधार	–	20
ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए रेशम कीट पालन	–	22
प्रेरणा के आलोक पुंज	रचना शर्मा	23
राजस्थान में हस्तशिल्प	चंद्रभान यादव	28
21वीं सदी में हथकरघा	गिरीश चंद्र पांडेय	31
ग्रामीणों को स्वावलंबी बनाता भदोही का कालीन उद्योग	अखिलेश चंद्र यादव	33
बिहार की अर्थव्यवस्था में कुटीर एवं लघु उद्योगों का योगदान	तपन कुमार शांडिल्य	36
शोधयात्रा : स्वचालित जग	–	38
वित्तीय समावेशन में वित्तीय साक्षरता की भूमिका	गौरव कुमार	40
जहां चाह वहां राह : एक अलग तरह की यात्रा	कुंजांग डोल्मा	43
भारत में बाघों की संख्या बढ़ी	सुरेश अवस्थी	45
पहाड़ों में सिंचाई	वीरेन्द्र पैन्यूली	47
रवीन्द्रनाथ टैगोर : आसमां के पते पांख पर देखना	सरोज कुमार वर्मा	49
नये प्रकाशन : गढ़वाल-हिमालय का व्यापक अध्ययन	देवेन्द्र उपाध्याय	52

योजना हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'महानिदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें : व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक लेवल आर.के.पुरम, नयी दिल्ली-1

दूरभाष : तार : सूचनाप्रकाशन।

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं :- सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-H, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पाल्दी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) * के.के.बी. रोड, नयी कॉलोनी, मकान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक : ₹ 100 **द्विवार्षिक :** ₹ 180; **त्रैवार्षिक :** ₹ 250; **विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश:** ₹ 500; **यूरोपीय एवं अन्य देश :** ₹ 700।

'योजना' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। ज़रूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए *योजना* उत्तरदायी नहीं है।

ENSEMBLE

सिविल समाज का मार्गदर्शक

ENSEMBLE में सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी सिर्फ शिक्षण नहीं है, ENSEMBLE विद्यार्थियों की विभिन्न समस्याओं का संस्थाबद्ध एवं व्यक्तिगत समाधान विभिन्न प्रकार की योजनाओं के द्वारा उपलब्ध कराता है। यहाँ तक कि विभिन्न प्रकार के अध्याय के लिए विभिन्न प्रकार का शिक्षण भी उपलब्ध है, जिसमें सिर्फ विषयों की विवेचना ही नहीं, बल्कि उनका सरलीकरण, विश्लेषण, कम्प्यूटरीकृत ग्राफिक मल्टीमीडिया और एनिमेशन और क्या नहीं शामिल है.....

ग्रीष्मकालीन बैच प्रारंभ

भूगोल

मुख्य परीक्षा

सबसे विस्तृत अध्ययन सामाग्री

गुणवत्ता जो अतुलनीय है

विश्वास जो अटूट है

दिशा जो निर्दिष्ट है

एक विशुद्ध शिक्षण

सम्पूर्ण समाधान.....

27 जून, 2011

सामान्य अध्ययन

मुख्य परीक्षा

15 जुलाई, 2011

IAS

अग्रिम प्रारंभिक परीक्षा

CSAT

सामान्य अध्ययन

15 जुलाई, 2011

आपका मार्ग प्रशस्त हो

के. सिद्धार्थ के निर्देशन में

Mukherjee Nagar Branch: 2nd Floor Batra Cinema, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-09.
Tel.: 011- 47527043, 27651852/53, 9899707583, 9811506926
Rajinder Nagar Branch: ENSEMBLE Knowledge Park, B-5/4, Poorvi Marg, NEA, Below ICICI Bank, Opp. Ganga Ram Hospital, Old Rajinder Nagar, New Delhi-60.
Tel: 011-42430022/33, 9811506926. **Email:** ensembleias@gmail.com,

YH-20/2011

इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भारत की विशिष्ट सांस्कृतिक छवि में हथकरघा और हस्तशिल्प की समृद्ध विरासत का बड़ा योगदान है। अतीत में बंधेज, जरदोजी, कांजीवरम, बोम्कई अथवा तंगेल की रंगबिरंगी धारियां, सुगंधित चंदन पर उकेरी जाने वाली चित्ताकर्षक छवियां, शिल्पकारों के हथौड़े से आश्चर्यजनक और विविध रूपाकार ग्रहण करने वाले धातुओं की कौंध तथा कालीनों और दरियों, बक्सों और झोलों, आभूषणों और पच्चीकारी की विविधता भले ही देश के किसी भी कोने में स्थित गांव में आम दैनंदिन की गतिविधि रही हो, लेकिन अब बदलती हुई स्थितियों में ये उतनी आम नहीं रह गई हैं। अब ये तेजी से आधुनिक जीवनशैली का हिस्सा बन रही हैं और दुनियाभर के करोड़ों लोगों के दिलों में भारत के लिए जगह बना रही हैं। देश के अंदर और बाहर, हर जगह हाथ से निर्मित होने में निहित विशिष्टता और अपने-आप में एकमात्र होने की खूबी, मिलों से बड़ी संख्या में उत्पादित एक जैसे उत्पादों की एकरसता से ऊबे लोगों को अपनी तरफ आकर्षित कर रही है। इससे हथकरघा और हस्तशिल्प के बाज़ार विस्तार की भारी संभावनाएं पैदा हुई हैं। इस क्षेत्र में 1.3 करोड़ से भी ऊपर बुनकरों और शिल्पियों को रोज़गार हासिल है जिनमें से बड़ा प्रतिशत समाज के कमजोर वर्गों से जुड़े लोगों का है। यह उद्योग काफी हद तक पर्यावरण हितैषी है तथा इसमें बिजली की बहुत कम ख़पत होती है। इन मुद्दों सहित व्यापारिक व्यवहार में ईमानदारी की ज़रूरत के प्रति लोगों के बीच जागरूकता तेज़ी से बढ़ रही है। ये सभी तत्व मिलकर हथकरघा और हस्तशिल्प क्षेत्र को देश की अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण हैसियत प्रदान कर रहे हैं। साथ ही ये कारक हस्तशिल्पियों के सशक्तीकरण का एक महत्वपूर्ण औजार भी बन रहे हैं। आज सरकार, स्वयंसेवी संगठन, शिल्पी मिलकर इसमें निहित संभावनाओं के सर्वोत्तम लाभ प्राप्त करने की दिशा में काम कर रहे हैं।

लेकिन इस क्षेत्र से जुड़े अनेक ऐसे मुद्दे हैं जिनपर नीतिगत हस्तक्षेप के साथ-साथ ज़मीनी क्रियान्वयन के स्तर पर ध्यान देने की ज़रूरत है। ये मुद्दे शिल्पियों के लिए सतत विश्वसनीय और सस्ते वित्त सुनिश्चित करने, कौशल प्रोन्नयन तथा रूपांकन में नवीन और उपयोगी प्रौद्योगिकी को इस्तेमाल करने से जुड़े हुए हैं। चिंता का एक दूसरा बड़ा क्षेत्र एक ऐसा विपणन तंत्र तैयार करने से जुड़ा है जो कारीगरों को न केवल उचित मूल्य दिलाए वरन उनके लिए सामाजिक रूप से समावेशी भी हो। इसके लिए उन्हें विपणन कौशल प्रदान करना होगा, मूल्य शृंखला तैयार करना होगा और उत्पादों का प्रचार-प्रसार, उनकी ब्रांड छवि बनाने जैसे अन्य अनेक कदम उठाने होंगे। कुल मिलाकर चुनौती इस क्षेत्र के लिए धारणीय उत्पादन और विकास की तथा शिल्पियों और बुनकरों के सशक्तीकरण की है।

बीते दो दशकों के दौरान सरकार और स्वयंसेवी संगठन, दोनों ही तरफ से इस क्षेत्र में अनेक सकारात्मक गतिविधियां देखने में आई हैं। इस क्षेत्र के बेहद बिखरे होने के कारण कारीगरों और शिल्पियों को होने वाले नुकसान से बचने के लिए उन्हें संकुलों और सहकारिताओं के द्वारा संगठित करने पर जोर दिया जा रहा है। अब वित्तीय संस्थान, स्वयंसेवी संगठन और सरकार- सब कारीगरों को सशक्त बनाने के सकारात्मक कार्यक्रम के साथ आगे आ रहे हैं, न कि उनके लिए सब्सिडी अथवा अन्य किसी प्रलोभन के साथ। इस प्रकार वित्तीय, तकनीकी, रूपांकन, प्रचार और बाज़ार बुद्धि जैसी सभी सुविधाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं ताकि कारीगर उच्च गुणवत्ता वाले और मांग के अनुरूप उत्पादन कर सकें तथा उसमें निरंतरता बनाए रख सकें। *योजना* के प्रस्तुत अंक में इस क्षेत्र के विशेषज्ञ अपने लेखों के जरिये भारतीय हथकरघा और हस्तशिल्प क्षेत्र से जुड़े मुद्दों से आपको रूबरू करा रहे हैं। ❑

ब्रांड खादी का विकास एवं भारतीय कुटीर उद्योगों पर इसका प्रभाव

● कुमुद जोशी

महात्मा गांधी ने खादी की खोज की, लेकिन इससे पहले ही खादी भारतीय सभ्यता की जड़ों में समाहित थी। वैदिक काल में आर्य खुद अपने लिए कपड़े बुनते थे। ये हाथ के बुने होते थे और शादी-विवाह के समय दुल्हन को यह ध्यान दिलाने के लिए खादी चरखा भेंट किया जाता था कि उन्हें कपड़ों के मामलों में स्वावलंबी बनना है। ऋग्वेद में खादी के बारे में कहा गया है- *ऐसा कपड़ा बुनो और रंगो जो गांठरहित हो, जिसका रंग चटक हो और जिसके जरिये सतत आनुवंशिक प्रक्रिया जारी रखते हुए तुम अपने कुटुंब को प्रकाशित करो।*

कबीर ने अपने प्रसिद्ध दोहे के जरिये खादी को अमर कर दिया है। उन्होंने कहा :

अष्ट कमल का चरखा बनाया,
पांच तत्व की पूनी।
नौ-दस मास बनन को लागे,
मूरख मैली कीनी।

अर्थात शरीर बनने में पांच तत्वों का प्रयोग किया गया और नौ मास में यह तैयार हुआ। इस प्रकार बनी शरीर रूपी चादर मूर्खों ने गंदी कर दी।

बापू ने सन् 1908 में खादी की खोज तब की थी जब वह लंदन में थे। वह वहां दक्षिण अफ्रीका के एक प्रतिनिधिमंडल में शामिल होकर गए थे। यह संयोगमात्र था कि उन्होंने खादी की खोज की। इसके जरिये उन्हें ऐसा महत्वपूर्ण औज़ार मिल गया जिसे उन्होंने भावी वर्षों में स्वाभिमान और स्वराज की अलख जगाने में इस्तेमाल किया। उनके लिए खादी भारतीय परंपरागत व्यवसाय की प्रतीक थी और इसके जरिये वह अपने स्वर्णिम अतीत को फिर से सार्थक करना चाहते थे।

गांधीजी ने खादी का प्रयोग असहयोग आंदोलन के दौरान यूनीफार्म के रूप में किया। उस समय गांधी टोपी भारत-ब्रिटिश संघर्ष और मैनचेस्टर के सूती कारखानों के विरोध और भारत की आधुनिक पहचान का प्रतीक बन गई थी। इस वस्त्र के साथ भावनाएं इतनी गहरी थीं कि इंदिरा गांधी के विवाह में भेंट देने के लिए पंडित नेहरू ने एक गुलाबी खादी की साड़ी तब बुनी थी जब वह जेल में थे। यह साड़ी अब भी विवाह के दिन नेहरू गांधी परिवार में महिलाओं द्वारा धारण की जाती है।

खादी गतिविधियों को औपचारिक रूप तब दिया गया जब अखिल भारतीय चरखा संघ का सन् 1925 में गठन किया गया। इसकी स्थापना के बाद अखिल भारतीय ग्राम उद्योग संघ गठित किया गया। सन् 1953 में इसे ही बदलकर अखिल भारतीय खादी एवं ग्राम उद्योग बोर्ड बना दिया गया और आखिरकार संसद के एक अधिनियम के जरिये अप्रैल 1957 में खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग अस्तित्व में आया।

स्वतंत्रता पूर्व के दिनों से खादी ने एक लंबा सफ़र तय किया है और आज खादी उत्पादन में सूती, रेशमी और ऊनी खादी शामिल है जिसका कुल मूल्य 628.98 करोड़ रुपये और बिक्री 867.01 करोड़ रुपये बैठती है। इसके जरिये 9.81 लाख लोगों को ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर मिलते हैं।

समय बीतने के साथ हाथ से खादी तैयार करने की प्रौद्योगिकी बदली और चार तकुवे वाला लकड़ी का चरखा सन् 1961 में एकाम्बरनाथ ने तैयार किया। अब खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग ने 8 तकुवे वाला चरखा विकसित कर लिया है। अब तो इसने इलेक्ट्रॉनिक चरखा बना लिया है जिसमें दो तकुवे एनएमसी के लगे हैं और एक स्पिनर चरखे के साथ घूमता है जिससे आर्मेचर/डायनमो जुड़ा होता है और बैटरी भी चार्ज़ हो जाती है। इस बैटरी से चरखा कातने वाले को अपने निवास पर ही बिजली की रोशनी मिल जाती है। यही नहीं वह इसका इस्तेमाल करते हुए ट्रांजिस्टर चला सकता है और मोबाइल फोन की बैटरी भी चार्ज़ कर सकता है।

वर्तमान आयोग खादी एवं ग्राम उद्योग की नीति निर्धारक संस्था है। उसने सौर चरखा भी विकसित किया है जिससे चरखा कातने वाले को मशक्क़त नहीं करनी पड़ेगी और खादी कारीग़रों की उत्पादकता बढ़ जाएगी। इसमें प्रकृति से नि:शुल्क उपलब्ध धूप का इस्तेमाल किया जाएगा जिससे खादी कारीग़रों को लाभ होगा और उम्मीद की जा रही है कि इसके

इस्तेमाल से वे प्रतिदिन लगभग 150 रुपये कमाने लगेंगे जबकि फ़िलहाल वे सिर्फ़ 60 रुपये प्रतिदिन कमा पाते हैं।

खादी ब्रांड

महात्मा गांधी खादी के सबसे बड़े ब्रांड अंबेस्डर (प्रचारक) थे। उन्होंने इसकी खोज स्वतंत्रता-पूर्व युग में की थी।

खादी में एक बहुत अनोखा गुण है। इससे एक ब्रांड के रूप में उसकी संभावनाएं बहुत बढ़ जाती हैं। हाथ से कते सूत का इस्तेमाल करके हाथ से बुने जाने के कारण हर खादी कपड़ा दूर से पहचाना जाता है जिससे वह अनोखा ब्रांड बन जाता है। यही नहीं, इसमें गर्मी में ठंडा और सर्दी में गर्म रहने का गुण है जो इस कपड़े की एक दुर्लभ विशेषता है। खादी का हर कपड़ा एकदम अलग होता है। धोए जाने पर खादी मुलायम हो जाती है और हाथ से बुना होने के चलते यह आरामदायक, त्वचा-हितैषी और आदर्श कपड़ा बन जाती है। मसलिन खादी को ढाका मसलिन भी कहा जाता है जो खादी का एक आश्चर्यजनक उत्पाद है। इसमें वह गुणवत्ता है जो किसी अन्य ब्रांड के कपड़े में नहीं मिलती। आज़ादी से पहले बहुत बढ़िया मसलिन तैयार की जाती थी और खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग अब उसे फिर से नया जीवन दे रहा है। रेशमी खादी, खादी उत्पादों की शृंखला का एक महत्वपूर्ण उत्पाद है जो देखने में आकर्षक और समृद्ध वर्ग में अपना स्थान बना चुका है। मुगा सिल्क का रंग स्वाभाविक होता है। सुनहरे रंग का यह वस्त्र ख़ासतौर से असम में बनता है और इसके विपणन की बहुत संभावनाएं हैं। कटिया सिल्क या अहिंसक खादी, जिसमें रेशम के कीड़े को निकल जाने दिया जाता है, एक अनोखी क़िस्म है जो गांधीवादी लोगों और अहिंसक वर्गों में दुनियाभर में मशहूर है। पोंडुरू खादी आंध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम ज़िले की ख़ास किस्म है। इसे बनाने में प्राकृतिक रुई का इस्तेमाल किया जाता है और इसकी कताई चतुर खादी कारीगरों द्वारा विशेष रूप से की जाती है। इसका धागा बहुत महीन होता है और इससे धोती, कमीज़ें आदि बनाई जाती हैं। इस फाइन वैरायटी को पोंडुरू खादी कहते हैं। यह नाम उसे पोंडुरू कस्बे से मिला है जो आंध्र प्रदेश में श्रीकाकुलम ज़िले में स्थित है।

वर्ष 2001 तक खादी को एक ब्रांड के रूप में स्थापित करने के गंभीर प्रयास नहीं किए गए। वर्ष 2001 में सरकार ने खादी एवं ग्राम उद्योग उत्पादों के लिए एक ही ब्रांड चलाने का एलान किया। इसके अनुसार आयोग ने खादी और ग्राम उद्योग उत्पादों के तीन ब्रांड विकसित किए :

- खादी ब्रांड– इसके अंतर्गत खादी के बने हाई फैशन डिज़ाइन वाले कपड़े और जड़ी बूटियों वाले सौंदर्य प्रसाधन बनाए गए जिसका लक्ष्य समाज का समृद्ध वर्ग है।
- सर्वोदय ब्रांड- इस ब्रांड के अंतर्गत साबुन, अचार, अगरबत्ती, शहद आदि वे एफएमसीजी उत्पाद आते हैं जो समाज के बड़े वर्ग के उपभोक्ताओं के लिए हैं।
- देसी आहार- इस ब्रांड के अंतर्गत प्राकृतिक और जैविक भोज्य पदार्थ आते हैं, जैसे– गुड़, दलिया, मसाले आदि।

ये ब्रांड वर्ष 2002-03 में शुरू किए गए। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डिज़ाइन, अहमदाबाद ने इनके लिए खादी ब्रांड का प्रतीक चिह्न बनाया जिसे ट्रेड मार्क प्राधिकरण में पंजीकृत कराया जा चुका है।

खादी और इसके उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए व्यावसायिक डिज़ाइनर लगाए गए जिनमें रोहित बल, मालती रमानी, जतिन कोछड़, देविका भोजनानी आदि शामिल हैं। उन्होंने खादी को फैशन वस्त्र के रूप में विकसित करने में सहायता की है। आज खादी ब्रांड के अंतर्गत सिर्फ़ कपड़े ही नहीं बल्कि खाद्य पदार्थ तथा प्राकृतिक एवं जड़ी-बूटियों से बनी वस्तुएं भी आती हैं। खादी ब्रांड को केवीआईसी ने रजिस्टर करवा लिया है और इसकी आपूर्ति करने वाले संस्थानों की गुणवत्ता और उत्पादन संबंधी बुनियादी सुविधाओं की जांच के बाद सूची तैयार कर ली गई है। ऐसा करते हुए आम पैकेजिंग और ब्रांड विकसित किया गया है। खादी ब्रांड के उत्पाद अब खादी की दुकानों से विभागीय बिक्री के जरिये बेचे जा रहे हैं। इनमें नयी दिल्ली का रीगल बिल्डिंग स्थित खादी ग्रामोद्योग भवन तथा अन्य 7,040 खादी दुकानें शामिल हैं। इसके अलावा मॉल और निजी शोरूमों को खादी ब्रांड वाले उत्पाद उपलब्ध कराए जा रहे हैं। खादी एवं ग्राम उद्योग भवन, नयी दिल्ली ने हाल ही में एक वैन चलाई है जिसके जरिये घूम-घूम कर खादी ब्रांड वाले उत्पादों का प्रचार किया जाता है। इसके अलावा खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग देशभर में क़रीब 200 प्रदर्शनियां आयोजित करता है जिनमें खादी ब्रांड के कपड़े और अन्य उत्पाद बेचे जाते हैं। पिछले चार वर्षों में खादी ब्रांड के उत्पादों का बिक्री संबंधी विवरण इस प्रकार हैं :

तालिका-1 (लाख रुपये में)

क्र. सं	वर्ष	डिज़ाइनर परिधान	खादी ब्रांड
1.	2007-08	39.05	80.41
2.	2008-09	49.95	88.48
3.	2009-10	48.29	88.28
4.	2010-11 (26.3.2011 तक)	90.94	111.30
	योग	**228.23**	**368.47**

इस ब्रांड के अंतर्गत आपूर्ति करने वाले संस्थान खादी एवं ग्राम उद्योग क्षेत्र की तुलना में बहुत कम हैं। लेकिन आयोग ने खादी क्षेत्र को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्नलिखित अनेक

नये उपाय किए हैं :

- **प्राकृतिक रंग वाली खादी का समारंभ** खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग ने कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, धारवाड़ (वीएएस) कर्नाटक के सहयोग से प्राकृतिक रंग की रुई का इस्तेमाल करके एक नयी खादी का उत्पादन शुरू करने का फ़ैसला किया है। प्राकृतिक रंग की खादी तैयार करने के लिए एक पूरी परियोजना यूएएस धारवाड़ के सहयोग से चलाई जा रही है और इसमें स्थानीय संस्थानों का भी सहयोग लिया जा रहा है। कर्नाटक के बाहर के संस्थानों का सहयोग भी इसमें बढ़ाया जा रहा है।
- **उत्पाद विकास डिज़ाइन एवं पैकेज़िंग** खादी को डिज़ाइन करने के लिए खादी संस्थानों ने एक नयी योजना शुरू की है। इसके लिए खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग ने 75 प्रतिशत अनुदान सहायता दी है और शेष 25 प्रतिशत राशि उत्पादक संस्थान खुद जुटाएंगे। परियोजना की ऊपरी सीमा दो लाख रुपये रखी गई है। उम्मीद की जा रही है कि डिज़ाइनर ऐसे डिज़ाइन बनाएंगे जिसे बुनाई और रंगाई के चरणों में लागू किया जाएगा और रेडीमेड फ़ैशन वस्त्र भी तैयार किए जाएंगे।
- इस योजना के अंतर्गत विपणन संबंधी मूल सुविधाओं का सुदृढ़ीकरण, नवीकरण और बिक्री केंद्रों का आधुनिकीकरण शामिल किया गया है। चरणबद्ध तरीक़े से खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग इन संस्थानों के केंद्र बनाएगा। इन्हें खादी भवन और खादी भंडारों को बाज़ार के अनुरूप बनाया जाएगा जहां अच्छे दिखने वाले खादी उत्पाद प्रदर्शित किए जाएंगे।
- अन्य उत्पादों की तुलना में खादी वस्त्रों को अलग से पहचान देने के उद्देश्य से करघों में ही निशान विकसित करने की व्यवस्था की गई है ताकि खादी ब्रांड के कपड़े पहचाने जा सकें। इससे गुणवत्ता पर भी नज़र रखी जा सकेगी।
- एशियाई विकास बैंक की सहायता से खादी सुधार एवं विकास कार्यक्रम शुरू किया गया जो खादी क्षेत्र को जीवंत और बाज़ार उन्मुख बनाने की दिशा में एक प्रमुख उपाय है। इस पर 15 करोड़ अमरीकी डॉलर (₹ 720 करोड़) की अनुदान निधि ख़र्च की जाएगी। इसके अंतर्गत सुधार के प्रमुख कार्यक्षेत्र निम्नलिखित होंगे :
  - कारीगरों की कमाई और उनका सशक्तीकरण
  - खादी मार्क का विकास
  - कच्चे माल की खरीद एवं उत्पादन
  - विपणन संगठन
  - बाज़ार से जुड़ी मूल्य नीति तथा लाभ सारणी का आरंभ
  - उत्पादन प्रोत्साहन
  - खादी संस्थाओं में सुधार
  - खादी ब्रांड का विकास और निजी-सार्वजनिक भागीदारी (पीपीपी) के ज़रिये व्यावसायिक विपणन संगठन का गठन इस पैकेज़ के अंतर्गत प्रमुख उपाय हैं। इस पैकेज़ को फरवरी 2010 से फरवरी 2013 तक के तीन वर्षों की अवधि में लागू किया जाएगा।

विपणन संगठन के उद्देश्य

विपणन संगठन इस क्षेत्र के उत्पादों को निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्यों के साथ बाज़ार पहुंचाने में सहायता करेगा :

- खादी वस्त्रों और ग्राम उद्योग उत्पाद को फिर से नये तरीक़े से पेश करने में सहायता।
- खादी ग्राम उद्योग क्षेत्र की वस्तुओं की बिक्री बढ़ाना और भारत और विदेश में इसकी मांग बढ़ाने के लिए काम करना।
- खादी को अन्य ऐसे ही उत्पादों के साथ प्रतियोगिता करने में सक्षम बनाना और ग्राहकों की आवश्यकताओं को समझकर विपणन नीतियां चलाना।
- खादी संस्थानों को बाज़ार से संबद्ध करते हुए आर्थिक रूप से सक्षम बनाना।
- ग्राहकों की रुचि को समझना और ऐसे उत्पाद तैयार करना जिसे ग्राहक ख़रीदना चाहें।
- खादी कारीगरों की कला को आकर्षित करना, बरकरार रखना और बढ़ाना।

लाओ जू ने कहा था कि हज़ारों मील की यात्रा पहले क़दम से शुरू होती है। खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग ने भी खादी क्षेत्र को सुदृढ़ करने और इसका ब्रांड विकसित करने के लिए ऐसे क़दम उठाए हैं जो निश्चय ही खादी के उत्पादन में लगे लाखों देशवासियों के जीवन में खुशियां लाएंगे। ❑

(लेखिका खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग की अध्यक्ष हैं।
ई-मेल : kumud_joshi@kvic.gov.in)

पिछले दशक में मशीनचालित करघा (पावरलूम) क्षेत्र की वृद्धि

वर्ष	मशीनचालित करघों की संख्या	विकास (प्रतिशत में)
2002-2003	16,92,737	-
2003-2004	18,36,856	8.5%
2004-2005	19,02,953	3.6%
2005-2006	19,43,892	2.5%
2006-2007	19,90,308	2.4%
2007-2008	21,06,370	5.8%
2008-2009	22,05,352	4.7%
2009-2010	22,46,474	1.9%
2010-2011 (31.10.2010 तक)	22,69,469	1.02%

हस्तशिल्प संभावनाओं को प्रोत्साहन

● वनिता विश्वनाथ

भारतीय हस्तशिल्प में बहुत विविधता है। शिल्पकार देशभर में और ख़ासतौर से ग्रामीण और शहरी इलाक़ों में फैले हुए हैं। हालांकि हस्तशिल्प को कुटीर उद्योग माना जाता है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में ये राजस्व कमाने के प्रमुख साधन बन गए हैं। हाल के वर्षों में अर्थव्यवस्था के इस क्षेत्र में लगातार 15 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज़ की गई है और यह अब निर्यात की प्रमुख वस्तु बन गया है। अधिकांश निर्माण इकाइयां गांव और छोटे कस्बों में स्थित हैं। अत: ग्रामीण समुदाय के लिए यह आय का प्रमुख साधन बन गया है। क़रीब 60 लाख शिल्पकार जो अधिकांशत: ग़रीब और महिलाएं हैं, इससे अपनी रोज़ी-रोटी कमा रहे हैं। इसके अलावा अब मध्य वर्ग चार महानगरों से आगे निकलकर अन्यत्र भी फैल रहा है। छोटे शहरों में भी इससे लाभ उठाए जाने की संभावनाएं हैं। यह संभावनाएं और बढ़ सकती हैं जब खुदरा व्यापार तंत्र का विस्तार कर दिया जाए।

उत्पाद विपणन के मामले में हस्तशिल्प एक जटिल जिंस है। वस्त्र और परिधानों के मामले में उत्पाद और डिज़ाइनें अलग चलती हैं। जो उत्पाद और डिज़ाइन इस्तेमाल किए जाते हैं उन्हें बुटिक माना जाता है और यह अब खुदरा व्यापार में चलने लगी हैं। इससे शिल्पकारों को बाज़ार में काम मिलने लगा है। हालांकि डिज़ाइनों के समरूप तैयार करने और सस्ते कपड़े के इस्तेमाल से वैसी ही चीज़ें बनाने के मामले में शिल्पकारों को मशीनों से चुनौती मिलती है। निष्पक्ष व्यापार और सामाजिक चेतना पर ध्यान दिया जाने लगा है और अब यह विश्वव्यापी आंदोलन बन गया है। निरंतर ख़पत, सामाजिक संरक्षा, पर्यावरण संबंधी मानक और व्यावसायिक स्वास्थ्य और सुरक्षा पर भी ध्यान दिया जाने लगा है। कुछ वर्ष पहले तक इन शब्दों पर कोई ध्यान नहीं देता था। अब ब्रांडिंग और सामाजिक चेतना के प्रसार में मदद के लिए प्रमाणन की सुविधा भी मिलने लगी है। चुनौती इस बात की है कि इनके लाभ बड़ी संख्या में शिल्पकारों तक पहुंचाए जाएं। यह चुनौती तब और भी बढ़ जाती है जब इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि अधिकांश शिल्पकार असंगठित क्षेत्र में हैं।

हस्तशिल्पों का ज्यादातर काम बिखरा और अनौपचारिक क्षेत्र में, ख़ासतौर से ग्रामीण क्षेत्रों में है। यह वरदान भी है और अभिशाप भी। महिलाओं के लिए यह एक वरदान है क्योंकि वे अपने घर में रहते हुए भी शिल्प का काम कर सकती हैं। इससे उन्हें घर बैठे ही काम करने का मौका मिलता है। अभिशाप इसलिए कि बिखरे होने के चलते इसके उत्पादन की लागत बढ़ जाती है और उत्पादन और विपणन की कुशल श्रृंखला विकसित करना मुश्किल हो जाता है। उत्पाद और विपणन श्रृंखलाएं लंबी हो जाती हैं और इसके चलते बनने वाले संबंध अपारदर्शी हो जाते हैं। मार्जिन का हिसाब तदर्थ तरीक़े से लगाया जाता है जिससे शिल्पकारों का शोषण होता है और श्रम और कारीगरी के अनुरूप उन्हें पारिश्रमिक नहीं मिल पाता। अनेक मामलों में तो कोई औसत मानक ही नहीं है। हर लेन-देन अलग लेन-देन होता है जहां शामिल दोनों पक्ष ज्यादा से ज्यादा लाभ उठाने की कोशिश करते हैं। नतीज़ा यह होता है कि माल की क़ीमत कम हो जाती है और बेहतर गुणवत्ता वाले माल की लागत बढ़ जाती है।

इस क्षेत्र में सतत उत्पादन और विकास के लिए समन्वय एक बड़ी चुनौती है। समन्वय की ज़रूरत तब और जटिल हो जाती है जब बाज़ार में तरह-तरह के उत्पाद आते हैं और शिल्पकारों की रचनात्मकता और कारीगरी का लाभ उठाकर मूल्य श्रृंखला बनाई जाती है। असंगठित क्षेत्र के शिल्पकारों को कल्याण उपायों का लाभ प्रदान करने पर ज़ोर देने के कारण शिल्पकारों में समन्वय लाने में एक नयी मुश्किल जुड़ जाती है। शिल्पकारों की पिछड़ी व्यापार श्रृंखला विकसित करने में लघु उद्योगपति प्रमुख भूमिका निभाते हैं। परंपरागत रूप से भी ये उद्योगपति शिल्पकारों और स्वयंसेवी संस्थाओं से जुड़े रहे हैं और इनके साथ ही शिल्पियों का विकास हुआ है। इनमें समन्वय लाने और वित्त पोषण में सरकार की प्रमुख भूमिका है। उत्पाद विपणन की अगली श्रृंखला विकसित करने में प्रमुख भूमिका निभाने वालों की संख्या बढ़ी है लेकिन उत्पादन और ख़पत बढ़ाने की प्रगतिशील परिपाटी समझने में वे अब भी पीछे हैं। इन मुद्दों पर भी आगे चर्चा की जा रही है।

हस्तशिल्प क्षेत्र छोटे पैमाने के बिचौलिये और उद्यमियों की गतिशीलता पर फलता-फूलता है। हालांकि हस्तशिल्प के विभिन्न उप-क्षेत्रों में परिस्थितियां अलग-अलग हो सकती हैं। लेकिन गांव के बिचौलिये या ठेकेदार के स्तर पर सबसे कम रुकावटें होती हैं। उदाहरण के लिए पश्चिमी राजस्थान में कढ़ाई के उप क्षेत्र में ज्यादा निवेश की ज़रूरत नहीं पड़ती। इसलिए किसी ठेकेदार के लिए इस क्षेत्र से अगर उसका काम ठीक न चल रहा हो तो निकल जाना तुलनात्मक रूप से आसान होता है। लेकिन दूसरी तरफ यहां पर एक छोटा

ठेकेदार बनने के लिए भी मुश्किलों का सामना नहीं करना पड़ता। उसे ज़रूरत होती है सिर्फ़ एक परिचय और छोटी-सी पूंजी की। यह ठेकेदार मूल्य शृंखला के अंतिम छोर पर होते हैं लेकिन वह शिल्पकारों को रोज़गार दिलाने की दिशा में महत्वपूर्ण काम करते हैं। अनेक ठेकेदार शिल्पकार परिवार से आते हैं और वह भी ग़रीब व अनपढ़ हो सकते हैं। कुछ भी हो, उन्हें वित्तीय समर्थन मिलने की दिक्क़त और शिल्पियों की कुशलता अद्यतन करने की कठिनाइयों के चलते उत्पादन क्षेत्र में जाना मुश्किल पड़ता है। उत्पादन क्षेत्र में ही मूल्यवर्धन होता है और यहां लाभ अधिक है। इस कारण हस्तशिल्प क्षेत्र पूरा संभावित लाभ नहीं उठा पाता है, और मूल्य शृंखला में वृद्धि के साथ पारदर्शिता में वृद्धि नहीं हो रही है।

गैर-सरकारी संगठन काफी समय से शिल्पकारों की सहायता करते रहे हैं। उन्होंने शिल्पकारों के संगठन बनाए हैं और सरकारी समितियों तथा निर्माता कंपनियों की स्थापना की है। लेकिन शिल्पकारों के संगठन एवं गैर-सरकारी संगठनों के बीच वित्त एवं क्षमता में अंतर बढ़ता रहा है जिसके कारण इसका कार्यक्षेत्र बढ़ाने और अधिक संख्या में शिल्पकारों को रोज़गार देने में मुश्किलें आई हैं। ऐसा करने के लिए इनके बीच समन्वय स्तर बढ़ाए जाने की ज़रूरत है और उत्पाद डिज़ाइन, कच्चे माल की आपूर्ति, व्यापार प्रक्रिया तथा वित्तीय प्रवाह और विपणन क्षेत्र में सहायता देना ज़रूरी है ताकि ठीक समय पर अच्छी गुणवत्ता वाली आपूर्ति की जा सके। ऐसा न होने पर थोड़े से शिल्पकार भी अपनी आमदनी बढ़ाने में नाकाम रहते हैं और संस्थान अपने उद्देश्य में विफल हो जाते हैं। जो ठेकेदार समुचित वेतन नहीं देते, उन्हें निकाल बाहर करने और शिल्पकारों को क्षमता बढ़ाने में सहायता दिए जाने की ज़रूरत है। अभी तक भारत में गैर-सरकारी संगठन मूल्य शृंखला बनाने में कामयाब हुए हैं जो संसाधन और कुशल श्रम जुटाकर उत्पाद विकसित करते हैं और उनके विपणन की व्यवस्था करते हैं।

हस्तशिल्प का एक अलग बाज़ार विकसित हो चुका है जिसमें उद्यमियों और शिल्पकारों का प्रतिनिधित्व करने वाले संस्थानों को अपने उत्पाद बेचने का मौका मिलता है। इसे खुदरा व्यापार के लिए सुविधाजनक बनाए जाने की ज़रूरत है। हस्तशिल्प उत्पादों के लिए बाज़ार में जितने अवसर उपलब्ध हुए हैं उतनी व्यापार क्षेत्र में आपूर्ति क्षमता नहीं बढ़ी है। खुदरा क्षेत्र को सुसंगठित तथा सुनियंत्रित आपूर्ति शृंखला की ज़रूरत है। लेकिन यहां भी समन्वय क्षमता उपलब्ध न होने से बाधा आती है। आज भी शिल्पकार बाज़ार में बढ़े अवसरों से लाभ नहीं उठा पाते। बड़े पैमाने पर अकुशलता मौजूद है और गुणवत्ता ख़राब होने तथा आपूर्ति में देर लगने के कारण मांग रद्द कर दिए जाते हैं। इससे भी बाज़ार के विकास और हस्तशिल्पकारों को प्रोत्साहित करने में बाधा आती है। हालांकि मूल्य शृंखला असंगठित होने से स्थानीय उद्यमियों (ठेकेदारों और छोटे उत्पादकों) को इस क्षेत्र में विसंगतियों से निपटने में सहायता मिलती है। लेकिन जो शिल्पकार नियमित रूप से काम करके इस क्षेत्र में रोज़ी-रोटी कमाना चाहते हैं, उन्हें निराशा होती है।

इस क्षेत्र में लाभ न कमाने वाले सेवा संगठन भी आ रहे हैं जो समन्वय लाने और कुशलता विकसित करने तथा विपणन और डिज़ाइन करने में शिल्पकारों की सहायता करते हैं। इनमें से कई ई-कॉमर्स प्लेटफार्मों का इस्तेमाल करके शिल्पकारों को लाभ पहुंचाते हैं। लेकिन यह संगठन वित्त पोषण का काम नहीं करते जिससे शिल्पियों को पूंजी जुटाने में मुश्किल पड़ती है और इसके लिए उन्हें वित्तीय संस्थानों, सरकार और अन्य एजेंसियों का मुंह ताकना पड़ता है। सेवा संगठनों के लिए यह अच्छी बात हो सकती है। लेकिन शिल्पियों को इससे परेशानी होती है। हस्तशिल्पियों को सेवाएं देने वाले संगठन उनके उत्पाद के लिए फारवर्ड लिंकेज भी नहीं बना पाते जिससे उन्हें सामाजिक सुरक्षा नहीं मिल पाती।

इसके अतिरिक्त इन संगठनों की सेवाओं के अधिकांश लाभार्थी स्थानीय उद्यमी और ख़ासतौर से ठेकेदार हैं जिससे हस्तशिल्पियों को रोज़गार देने का उनका उद्देश्य पूरा नहीं होता। यह संगठन गैर-सरकारी संस्थाओं की अपेक्षा समन्वय लाने में कम सक्षम हैं क्योंकि लोग उन्हें शक की निगाहों से देखते हैं। बने रहने की उनकी सामर्थ्य और किसी अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में काम कर सकने की उनकी क्षमता पर ज्यादा ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है क्योंकि उन्हें इस स्थिति में लाना है कि वह हस्तशिल्पियों को दी जाने वाली अपनी सेवाओं को सुदृढ़ और मानकीकृत बना सकें। दूसरी ओर निर्यातक और खुदरा व्यापारी हैं जो हस्तशिल्पियों से दूरी बनाकर रखते हैं और उन नियमों पर बेहतर प्रक्रिया देते हैं जो सीधे-सीधे उनके मुनाफ़े को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए रासायनिक रंगों और रासायनिक अपशिष्ट के निपटान संबंधी नियम। इन व्यापारियों के अपने संगठन और संघ हैं और वे सुसंगठित हैं और उनका उद्देश्य अपने हितों की रक्षा करना है। इन लोगों ने शिल्पियों और उनके संगठनों की तरफ ध्यान नहीं दिया है और हस्तशिल्पियों के लिए काम करने वाले एनजीओ के प्रति भी वे संवेदनशील नहीं हैं।

सरकार इन हस्तशिल्पियों के लिए जो योजनाएं बनाती है उनमें हस्तशिल्पियों के लिए मूल्य शृंखला बनाने पर न तो ध्यान दिया जाता है और न ही उनकी कुशलता और डिज़ाइन, उत्पाद विकास, मूल सुविधा, व्यापार क्षमता और विपणन सुविधाएं और कार्यकारी पूंजी की व्यवस्था की जाती है। अनेक ऐसे पहलू हैं जिन पर ध्यान नहीं दिया जाता। उदाहरण के लिए परिवहन की कोई व्यवस्था नहीं की जाती। सरकार इनके कल्याण के लिए जो योजनाएं बनाती है उन्हें गांवों में लागू करना मानव संसाधन के मामले में बहुत ख़र्चीला पड़ता है। प्राय: इसके लिए किसी दानदाता की ज़रूरत पड़ती है जो अक्सर विदेशी होता है। इनके द्वारा दी गई रक़म के सहारे सरकारी योजनाएं लागू की जाती हैं। भारत जैसे विकासशील देश के लिए इस प्रकार की वित्त व्यवस्था कम पड़ रही है। लेकिन इससे हस्तशिल्प क्षेत्र की सहायता करने वाले एनजीओ पर क्या असर पड़ेगा यह अभी स्पष्ट नहीं है। कुछ भी हो, यह पक्का है कि हस्तशिल्पियों के विकास में समन्वय के लिए सरकार की सहायता ज़रूरी है। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार के कार्यक्रम बेहतर ढंग से बनाए जाएं जिनमें विभिन्न प्रकार के हस्तशिल्पी वर्गों और उनके उपखंडों का ध्यान रखा जाए। ❑

(लेखिका उद्योगिनी **की मुख्य कार्यकारी अधिकारी हैं।**

ई-मेल : vanitaviswanath@udyogini.org)

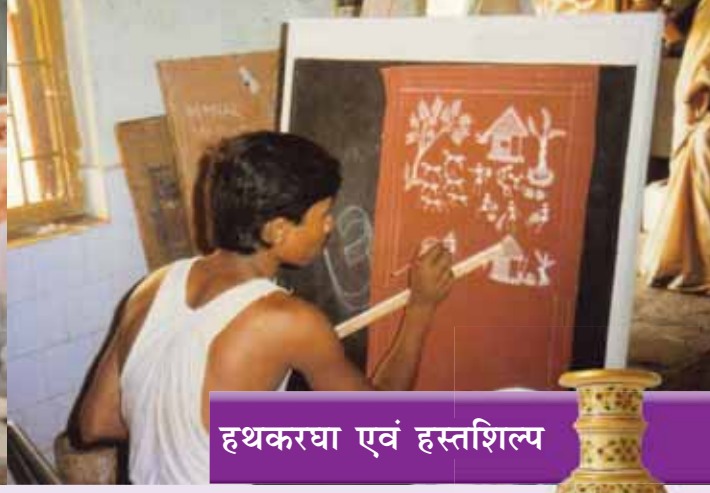

भारतीय शिल्प प्रौद्योगिकी के युग में

● लैला तैयबजी

विडंबनाओं से भरे राष्ट्र में एक विडंबना भारत का उसके शिल्प और शिल्पियों के प्रति नज़रिया है। अधिकांश विदेशियों के लिए वे भारत की जान हैं; ऐसा कुछ जो उन्हें दूसरों से अलग और अनूठा बनाता है। पश्चिमी देश जब पिछली दो सदियों के अपने औद्योगीकरण और भारी उत्पादन पर नज़र डालते हैं तो उन्हें इसका और भी मलाल होता है कि भारत में शिल्प और शिल्पियों की स्थिति अच्छी नहीं है। चीनियों की हमारे शिल्प-कौशल पर लंबे समय से नज़र रही है और वे पिछले एक दशक से भी अधिक समय से भारत से शिल्पियों को अपने देश बुलाकर ले जा रहे हैं– कोल्हापुरी चप्पल बनाने वाले चर्म शिल्पियों से लेकर सहारनपुर के काष्ठ शिल्पियों, कांचीपुरम (का जीवाश्म) साड़ी के बुनकरों और शैल शिल्पियों तक; ताकि वे अपना शिल्प ज्ञान चीनी कारीगरों को सिखा सकें। अन्य एशियाई देशों से समझदारी में एक क़दम आगे रहने वाले चीनी लोगों ने महसूस किया कि वैश्वीकृत उपभोक्तावादी अर्थव्यवस्था में वही देश सारे तुरूप के पत्ते अपने पास रख सकेगा, जिसके पास उद्योग और हस्तशिल्प, दोनों का मज़बूत आधार होगा। वे जानते हैं कि अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में उपभोक्ता और परिष्कृत और कठोर मांगें रखने वाले हो गए हैं। वे अपनी तरह का अकेला और अनूठा उत्पाद चाहते हैं। बाज़ारों में आमतौर पर बिकने वाले एक ही ढर्रे के उत्पादों के स्थान पर वे हाथ से बने विशिष्ट उत्पादों के मुरीद होते हैं।

एक रोचक तथ्य यह है कि थाईलैंड, इंडोनेशिया, कंबोडिया, मलेशिया, नेपाल और यहां तक कि फिलीपिन्स जैसे एशियाई देशों ने भी यह महसूस किया है कि देसी शिल्प उन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लाभ की स्थिति में ला सकता है। किसी भी देश की विरासत और इतिहास के एक भाग के रूप में, प्राकृतिक सामग्रियों से निर्मित और अनूठी स्थानीय परंपराओं में हाथ से बने और आकर्षक स्थलों में चित्रात्मक ढंग से बेचे जाने वाले शिल्प और शिल्पी का अपना एक अलग ही आकर्षण होता है। आजकल आर्थिक पर्यटन का जो नया दौर प्रचलित हुआ है, शिल्प और शिल्पी उसके अहम पात्र हैं।

केवल भारत में ही एक करोड़ से भी अधिक शिल्पियों और शिल्पकारों को जबर्दस्त संभावनाओं वाली संपदा मानने के बजाय उन्हें एक बोझ समझा जाता है। एक वरिष्ठ नौकरशाह ने इसे एक 'डूबता हुआ उद्योग' (सनसेट इंडस्ट्री) तक कह डाला। इस क्षेत्र में निवेश करने के स्थान पर आम धारणा यही है कि जब तक अपने आप ही यह पूर्णरूप से विलुप्त न हो जाए, इसे अनुग्रह सहायता देकर सहारा देते रहना होगा। वास्तव में यह धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है। बहुत कम शिल्पी ऐसे हैं जो चाहते हैं कि उनके बच्चे शिल्पकार बनें और उनकी परंपरा को आगे बढ़ाएं। प्रत्येक दशक में हम 10 प्रतिशत से अधिक शिल्पियों और कारीगरों को खोते जा रहे हैं। इसके बावजूद एक और विडंबना यह है कि शिल्प-सामग्री की बिक्री, देश और विदेश में निर्यातित, प्रतिवर्ष 10 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। इसे तो डूबता हुआ सूर्य नहीं कहा जा सकता, हां डूबते सूर्य जैसे इसके इंद्रधनुषी रंग अवश्य अपना सौंदर्य बिखेर रहे हैं। शिल्प और शिल्पियों की दुरवस्था के लिए न तो गिरते बाज़ार दोषी हैं और न ही कम कमाई। शिल्पियों और कारीगरों की समाज में जो अधोस्तरीय स्थिति है, उसी के कारण उनमें से अधिकतर लोग नहीं चाहते कि उनके बच्चे उनके शिल्प को जीवन-यापन के साधन के रूप में अपनाएं।

स्वतंत्रता के बाद के पहले 25 वर्षों के दौरान भारतीय शिल्पियों और कारीगरों तथा उनके शहरी उपभोक्ताओं के बीच पुल का काम सरकार (सीसीआईसी और एचएचईसी, राज्यों के हस्तशिल्प निगमों के विक्रय केंद्रों और खादी ग्रामोद्योग आयोग के खादी भंडारों के रूप में) अथवा व्यापारी और निर्यातक किया करते थे। इस कमज़ोर और गैर-भरोसेमंद पुल के दोनों वर्गों की अपनी-अपनी सोच और अल्पावधि स्वार्थ थे और शिल्पियों की आवश्यकताओं तथा संभावनाओं के प्रति वे लगभग संवेदनशून्य थे। सत्तर और अस्सी के दशकों में गुर्जरी इसकी एक जाज्ज्वल्यमान अपवाद थी। सत्तर के दशक के प्रारंभ में एक नया चरित्र उभर कर सामने आया।

शिक्षा, स्वास्थ्य और पशुपालन जैसे गैर-शिल्पी मुद्दों को लेकर भारत के ग्रामीण अंचलों में काम कर रहे स्वैच्छिक संगठनों

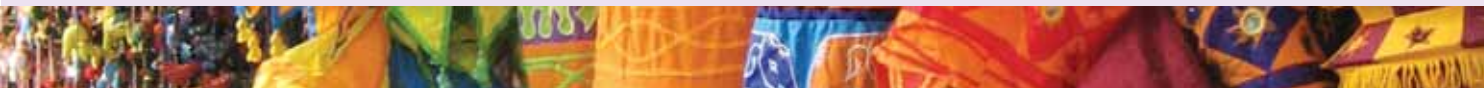

ने देखा कि चाहे वह बस्तर हो या बाड़मेर या कच्छ या फिर पूर्वोत्तर, इन सभी क्षेत्रों में स्थानीय लोग भले ही अन्य संदर्भों में निर्धन हों, परंतु हस्तशिल्प और पारंपरिक कला कौशल के मामले वे असाधारण रूप से संपन्न थे। उन्होंने पाया कि यदि शिल्प का समुचित रूप से विकास किया जाए तो वह आय और रोज़गार का बढ़िया उत्प्रेरक बन सकता है। उदाहरणार्थ, बाणी मरुस्थल में, प्राय: दो-तीन किलोमीटर की दूरी पर रहने वाले जनजातीय समुदायों में से प्रत्येक की कसीदाकारी की शैली एक-दूसरे से भिन्न और अनूठी है। उन सबकी रंग, रूपांकन और शिल्पकला के मूलभाव की निर्देशिका अलग-अलग है। इसी को और अच्छा रूप देकर यदि बाज़ार में उतारा जाए तो यह महिलाओं, विशेषकर घरों की चारदीवारी में ही सीमित रहने वाली और दूसरों पर निर्भर महिलाओं का जीवन ही बदल सकता है। यहीं से स्वैच्छिक संगठनों का प्रादुर्भाव इस क्षेत्र में हुआ। सृजन, तिलोनिया, सेवा, उर्मिल, संदूर कुशल केंद्र, अदिति, कला रक्षा, अन्वेषा, प्रदान, अवनी, बेरोज़गार महिला समिति, कुंभम और रहवा जैसे संगठन शुरू में अस्तित्व में आए और देखते ही देखते देशभर में अन्य अनेक संगठन सक्रिय हो गए। अस्सी के दशक में वे खूब फले-फूले।

ज़मीनी स्तर के संगठनों को रूपांकन, उत्पादन विकास, विपणन और अन्य प्रकार का सहयोग प्रदान करने के लिए कालांतर में साक्षा, दस्तकार, सीप, पारंपरिक कारीगर जैसे स्वैच्छिक संगठन और शिल्प परिषदें उभर कर सामने आईं। राष्ट्रीय अभिकल्पन संस्थान (एनआईडी), राष्ट्रीय फैशन प्रौद्योगिकी संस्थान (निफ्ट) और सृष्टि जैसे रूपांकन (डिज़ाइन) संस्थाओं ने अपने-अपने शिक्षण कार्यक्रमों में शिल्पियों और देसी शिल्प तकनीक को स्थान देना शुरू किया। श्रीमती पुपुल जयकर की छत्रछाया में मार्तंड सिंह की विश्वकर्मा और राजीव सेठी की अदिति तथा गोल्डेन आई जैसी प्रदर्शनियों ने समाज के उच्च वर्ग का ध्यान आकृष्ट कर भारतीय शिल्प और रूपांकन को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय प्रसिद्धि दिलाई।

यद्यपि अयोध्या के विवादित ढांचे गिराए जाने के समय तक देश में उग्र राष्ट्रवादिता, सांप्रदायिक हिंसा और धार्मिक उन्माद चरम पर पहुंच चुका था, अस्सी और नब्बे का दशक भारत की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पहचान को फिर से तलाशने का युग कहलाएगा। इसी कालखंड में राष्ट्रीय आत्मविश्वास परवान चढ़ा। शिल्पकला के लिए यह स्वर्णिम काल था। इस दौरान मंगलगिरि, महेश्वर, ज़रदोज़ी, चिकन, कांथा और शीशे की कढ़ाई, बंधनी और लहरिया बंधेज, अज्रक, खारी और बाग की छपाई कला को आश्चर्यजनक ढंग से पुनर्जीवन मिला। तसर (कोसा) और मूंगा की बुनाई, मधुबनी चित्रकला, लाख और धातु को मिलाकर ढालने की खोई हुई कला, कांगड़ा रूमाल, आदिवासी आभूषण आदि को स्वीकार्यता मिलनी शुरू हुई। श्वेत और सुनहरे अंगवस्त्र, भुजोड़ी बुनावट और नगा तथा कुल्लू की शालें चर्चित हस्तियों के कंधों पर सुशोभित हुईं और चिक, उर्ली, पट्टारा संदूक, कांसा, बाड़मेर की कथरीनुमा चादरों और पांजा दरियों को लोग घरों में सजावट के लिए इस्तेमाल करने लगे। झाड़फानूस, कालीन, मखमल और तराशे हुए शीशों के स्थान पर देसी शिल्प को अपनाया जाने लगा। एलिजाबेथ केरकर की पैनी निगाहों के असर से ताज समूह के सभी होटल समसामयिक शिल्प के उपयोग के शानदार उदाहरण के रूप में उभरे। अंतरराष्ट्रीय पर्यटकों के पसंदीदा ये सभी होटल रचनात्मक और कलात्मक ढंग से सजाए गए हैं और इनमें भारत के पारंपरिक शिल्प और कला की भूमिका प्रभावशाली रही है। परंतु उनकी वर्तमान कला-सज्जा की पहल इस बात का प्रमाण है कि किस प्रकार भारत ने 21वीं सदी के प्रारंभ में शिल्प और रूपांकन के लिहाज़ से अपना स्थान गंवा दिया। मुझे यह बात चौंकाती है कि संगतराशी, जड़ाई, काष्ठशिल्प, पक्की मिट्टी से बने कलात्मक वस्तु, भित्तिचित्र और कलात्मक टाइल जो हमारे वास्तुशिल्प के बहुमूल्य अंग रहे हैं और जो सदियों से भारतीय इमारतों को गौरव प्रदान करते रहे हैं, समसामयिक सार्वजनिक स्थापत्य अथवा आंतरिक सज्जा में कहीं दिखाई नहीं देते।

पिछले दो दशकों के उदारीकरण और वैश्वीकरण से व्यापक आर्थिक लाभ हुआ है परंतु इसका दुखद पहलू यह है कि उपभोक्ता अपने-अपने शैलीगत आदर्श के लिए पश्चिम की ओर देखने लगे हैं। प्रतिष्ठा के प्रतीक, अंतरराष्ट्रीय ब्रांड और फैशन का पूर्वानुमान भारतीय मध्यवर्ग के रहन-सहन को अब अधिक प्रभावित करते हैं। यह कैसी विडंबना है कि देश में ऐसे पब और डिस्को खुल गए हैं जहां साड़ी पहनने वाली महिला को प्रवेश देने से मना कर दिया जाता है और किसी के माथे पर शिकन तक नहीं आती। यह संदेश अब ग्रामीण भारत तक पहुंच रहा है।

आशा है कि एकाध दशक में पुराने दिन वापस आएंगे और एक जैसी दुकानों और शोरूम तथा नामचीन कंपनियों की नकल वाले उत्पादों से सजे एक जैसे मॉल से हमें छुटकारा मिलेगा और बाज़ार में अलग-अलग तरह के विशिष्ट उत्पाद सजेंगे। ऐसा ज़रूर होगा, क्योंकि कब तक लोग एक-दूसरे की नकल कर खुश होते रहेंगे, जबकि भारत में अभी भी हस्तनिर्मित कलात्मक शिल्प से परिपूर्ण उत्पाद औद्योगिक रूप से निर्मित सामूहिक उत्पादों के आधे से भी कम मूल्य पर बनाए जा सकते हैं और, जैसाकि जीवनशैली के अधिकांश मामलों में होता रहा है, इस प्रकार का संदेश भी विदेशों से ही आएगा। पश्चिम ने जिस प्रकार हमें प्राकृतिक रंगों, जड़ी-बूटियों से निर्मित सौंदर्य सामग्री, जैविक (आर्गनिक) भोज्य पदार्थ, आयुर्वेद और योग की क़ीमत बतलाई है, ठीक वैसा ही इस क्षेत्र में भी होगा।

और आशा की किरणें फूटने लगी हैं। युवा डिज़ाइनर विलुप्तप्राय तकनीक की खोज में उत्साह दिखा रहे हैं। थेया आभूषण, बीदरी यातानी, पछेड़ी कलमकारी, गोंड चित्रकला, सांजी कागज़ शिल्प, जड़ाऊ कार्य आदि का कल्पनाशील और नवाचारी प्रयोग युवा डिज़ाइनर अपने-अपने क्षेत्रों में रचनात्मक ढंग से कर रहे हैं। शिल्पकार और कारीगर अब अधिक आत्मविश्वास से भरे हुए हैं तथा इंटरनेट, लेजर तकनीक और कंप्यूटर के उपयोग से नित नये क्षितिज तलाश रहे हैं और स्वयं सीधे नये-नये बाज़ारों से संवाद-संपर्क कर रहे हैं। हाल ही में एक सरकारी बैठक में एक बुज़ुर्ग शिल्पी ने अपना नोकिया फोन लहराते हुए कहा, ''यह मोबाइल फोन दशकों

से मिल रहे सरकारी अनुदान और योजनाओं से कहीं अधिक लाभप्रद रहा है।'' पिछले वर्ष अक्तूबर के दस्तकार नेचर बाज़ार में कच्छ स्थित जूड़ी फ्रेटर के डिज़ाइन स्कूल और श्रीनगर स्थित क्राफ्ट डिज़ाइन इंस्टीट्यूट से निकले युवा शिल्पकारों ने चित्ताकर्षक कार्य प्रदर्शित किए। समसामयिक बाज़ार की पसंद वाले ये डिज़ाइन निर्माताओं के व्यक्तिगत कौशल और सांस्कृतिक पहचान को दृढ़ता से प्रदर्शित करते हैं। क्रेताओं ने अच्छा उत्साह दिखाया। आज के शहरी युवाओं द्वारा भारतीय शिल्प को अपनी आधुनिक जीवनशैली में उत्साह के साथ समेकित करते और आनंद उठाते देख प्रसन्नता होती है। कौड़ियों, चांदी के घुंघरुओं और शीशे की कढ़ाई युक्त चटकीले रंगों वाली बेल्ट को अपनी लेवाइस जीन पर कसते हुए एक युवती के मुख से निकला, हे, दिस इज़ कूल (अरे, यह तो बहुत बढ़िया है)। बंधेज का दुपट्टा अपने टी शर्ट पर डाले यह आधुनिक युवती प्रदर्शनी में रखी गई शिल्पकृतियों से बहुत प्रभावित दिख रही थी।

नकारात्मक सोच वाले व्यापारियों और मीडिया विशेषज्ञों की निराशाजनक सोच के बावजूद आज के शिल्प और शिल्पियों की समस्या न तो बाज़ार से कम होती मांग है और न ही वैश्विक बाज़ार में प्रवेश की समस्या है। जैसाकि मैं पूर्व में कह चुकी हूं, शिल्पियों और कारीगरों के प्रति हमारा अपना नज़रिया ही असली समस्या है। हम स्वयं तो आगे बढ़ रहे हैं और ज़माने के साथ बदल भी रहे हैं परंतु उन्हें उनके पुराने माहौल में रहने के लिए उनकी निंदा करते हैं। हम ही उन्हें अतीत की सुंदर किंतु घटिया सामग्री के तौर पर देखते रहते हैं, बाज़ार के पेशेवर लोगों जैसा समान व्यवहार नहीं करते। यहां तक कि वे शिल्पी भी अपने कौशल और परंपरा का सम्मान करते नहीं दिखते। कौन-सी मध्यवर्गीय महिला एक शिल्पी को, भले ही यह राष्ट्रीय पुरस्कार विजेता हो, अपने दामाद के रूप में स्वीकार करेगी? या फिर उसे एक सरकारी बाबू (क्लर्क) अथवा ग्राहक सेवा अधिकारी के समान भाव देगी? शिल्पियों को रचनात्मक कलाकारों के रूप में भी नहीं स्वीकार किया जाता है। भारतीय कला के मूल्य आसमान छू रहे हैं, परंतु शिल्पियों को अभी यह सुख नहीं प्राप्त हो सका है।

कुछ वर्ष पहले भारत में भारतीय हस्तशिल्प के पुनरुत्थान की स्वर्ण जयंती मनाई गई थी। समारोह के अंतर्गत तीन दिवसीय सेमिनार आयोजित किया गया, जिसमें सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्रों की भारतीय हस्तशिल्प से जुड़ी सभी नामी-गिरामी हस्तियों ने भाग लिया था। इसकी विषयवस्तु थी– ''उस्ताद शिल्पियों की स्थिति और संपोषणीय विकास।'' सम्मेलन में दस उस्ताद शिल्पकारों (मास्टर क्राफ्ट्समेन) का सम्मान किया गया। इन लोगों को राष्ट्रपति ने हाल ही में स्थापित 'शिल्प गुरु' के सम्मान से नवाज़ा था।

कार्यक्रम में हम सभी का नाम वक्ताओं, परिमार्जकों और संयोजकों के रूप में लिखा हुआ था, परंतु जिन शिल्प गुरुओं और शिल्पज्ञों के सम्मान में कार्यक्रम आयोजित किया गया था, उन्हें एक समूह में रख दिया गया था, जैसेकि वे कोई संगठित इकाई हों। नि:संदेह, सांस्कृतिक रूप से ऐसा करना रोचक और मनोरम था, परंतु उनकी व्यक्तिगत पहचान, आवश्यकताओं और विचारों का कोई उल्लेख नहीं था।

यहां यह उल्लेख करना रोचक होगा कि जब इन लोगों ने मुंह खोला और अपने प्राय: आलोचनात्मक विचार व्यक्त किए और अपनी आपबीती सुनाई तो इन असाधारण, तेज़ी से विलुप्त हो रही सृजनात्मकता और संस्कृति के वादियों ने ऐसी कोई मांग नहीं रखी जो नयी सहस्राब्दी के शिल्पकारों के लिए अनुभवातीत हों; उनकी चाहतें बहुत छोटी थीं। उनकी मांगें रेलवे पास, पेंशन, सरकारी कार्यालयों में बाबुओं से सम्मान (रिश्वत की मांग के स्थान) पर, उनके कार्य को प्रदर्शित करने वाले संग्रहालयों में नि:शुल्क प्रवेश जैसी छोटी-छोटी बातों तक सीमित थीं। उन्हें जो बात सबसे अधिक याद आई वह कोई अद्भुत चमत्कारी शिल्प अथवा अंतरराष्ट्रीय सम्मान नहीं, बल्कि वह थी 50 वर्ष पूर्व कमला देवी चट्टोपाध्याय की मुस्कान की हार्दिकता और स्नेह। इससे हमें उनकी वर्तमान स्थिति का पता चलता है और यह कि उनके अपने बारे में क्या विचार है। एक शिल्पज्ञ ने कहा, ''मुझे बहुत से पुरस्कार मिल चुके हैं, परंतु मैं अभी भी फुटपाथ पर ही काम करता हूं।''

यद्यपि शिल्पी और कारीगर बहुत कम मांगें रखते हैं, उन्हें उन सभी चीज़ों की आवश्यकता है जो बाज़ार के सभी पेशेवरों की होती है। ये हैं– शिक्षा, निवेश, शोध एवं विकास, आधुनिक तकनीक एवं प्रौद्योगिकी, रूपांकन और उत्पाद विकास, ऋण सुविधाएं, समुचित कार्यस्थल, बाज़ार की सुविधा और सबसे महत्वपूर्ण– सामाजिक स्वीकार्यता और प्रतिष्ठा।

हाल ही में कपड़ों और सिले-सिलाए पोशाकों के निर्माताओं पर उत्पाद कर लगाया गया है। इससे बड़े निर्माताओं के अलावा ग्रामीण और असंगठित क्षेत्रों में काम कर रहे हज़ारों छोटे-छोटे कारीगरों और उनके समूह भी प्रभावित हुए हैं। यह कर इस बात का प्रतीक है कि हमारे नीति-निर्माता इस क्षेत्र के बारे में कोई ख़ास समझ नहीं रखते। उनके लिए इस कमरतोड़ नियम का पालन करना न केवल कठिन होगा बल्कि उनके जीवन के कटु यथार्थ के साथ मज़ाक भी होगा। एक ओर तो हम समावेशी विकास की बात करते हैं, वहीं दूसरी ओर पहले से ही हाशिये पर खड़े शिल्पियों को और दूर करते जा रहे हैं। बंगाल के एक हथकरघा बुनकर ने, एक उत्पादन निरीक्षक द्वारा अनुपालन की शर्त के मुताबिक एक बंधक भंडारगृह दिखाने की मांग की तो उसने जो स्थान दिखाया उसमें ये चीज़ें थीं– उसका परिवार, करघा, कार्यस्थल, कच्चा माल और तैयार वस्तुएं– सभी कुछ एक कच्चे कमरे में।

भारतीय शिल्प का भविष्य हमारे ही हाथों में है। हमारी अनूठी धरोहर और एक करोड़ जीवित कारीगर एक बहुत बड़ी शक्ति है, न कि कोई कमज़ोरी। परंतु यह स्वीकार करना होगा कि उन्हें प्रोत्साहन और निवेश की दरकार है। केवल समय ही बताएगा कि इन अद्भुत कौशल और परंपराओं की परिणति सकल विजय गाथा के रूप में होगी अथवा एक खोई हुई दुखांत कथा में। ❑

(लेखिका दस्तकार **की अध्यक्ष हैं।**

ई-मेल : lailatyabji@gmail.com)

R रूद्र सिविल सर्विसेज

"हमारा मिशन/उद्देश्य - हिन्दी माध्यम में प्रतिशत चयन दर बढ़े।"

(हिन्दी माध्यम का सर्वोत्तम संस्थान)

(सामान्य अध्ययन, अभिरुचि परीक्षण, निबंध, भाषा-ज्ञान (सामान्य हिन्दी एवं अंग्रेजी), साक्षात्कार

भारत की इस सबसे प्रतिष्ठित व गतिशील सेवा में प्रत्येक स्नातक भागीदारी ही नहीं, अंतिम तौर पर सफल भी होना चाहता है। सफलता के कुछ मानक हैं- उत्कृष्ट् श्रम शक्ति, ऊजर्स्विता, समय-प्रबंधन, ज्ञान-कौशल व अभिव्यक्ति- यहां पर हम अतुलनीय हैं, अध्ययन के उपरोक्त संदर्भ ज्ञान-अभिव्यक्ति-संवाद से जुड़े पहलू हैं- इस जोड़ के मर्म को समझने की आज महती आवश्यकता है।

स्तरीय व मौलिक ज्ञान, बेहतर अभिव्यक्ति, उत्कृष्ट लेखन क्षमता, उच्च आत्म विश्वास तथा हिन्दी से जुड़े हीन भाव व माध्यम की भ्रांति दूर करने में हम अनोखे व अद्वितीय होंगे।

हम आपके साथ मिलकर इतिहास रच सकते है।

इसी के साथ
अनंत शुभकमनाएं
एल.एम. त्रिपाठी
ए.के. गुप्ता

हमारे कक्षा-कार्यक्रम :

क्रम	परीक्षा का नाम व विषय	कक्षा प्रारम्भ होने की तिथि व समय
1.	सामान्य अध्ययन व निबंध (मुख्य परीक्षा-2011)	23 जून, सायं 5 व 7:30 बजे कुल समय- लगभग 4 माह व 1 माह
2.	आधारिक कक्षा कार्यक्रम (फाउंडेशन कोर्स) सामान्य अध्ययन, अभिरूचि परीक्षण, निबंध, भाषा-ज्ञान (सामान्य हिन्दी व अंग्रेजी), लेखन क्षमता व अभिव्यक्ति विकास, साक्षात्कार	14 जुलाई, 8 बजे प्रातः कुल समय- 8-10 माह
3.	सामान्य अध्ययन व अभिरूचि परीक्षण (प्रा. परीक्षा-2012)	21 जुलाई, 11 बजे दिन कुल समय- 6½ माह
4.	अभिरूचि परीक्षण (प्रा. परीक्षा-2012)	28 जुलाई, सायं 3 बजे, कुल समय- 3 माह
5.	सामान्य अध्ययन, निबन्ध (मुख्य परीक्षा-2012)	27 अक्टूबर, सायं 5 व 7:30 बजे
6.	सामान्य हिन्दी व निबंध (राज्य सिविल सेवाओं के लिए)	जुलाई से हर दूसरे माह प्रथम सप्ताह/2 माह
7.	निबन्ध (सिविल सेवा)	प्रत्येक माह, प्रथम सप्ताह, 1 माह
8.	साक्षात्कार	परीक्षा परिणाम के 5 दिन वाद

उपलब्ध विषय
लोक प्रशासन
द्वारा
सुशील सर
आप प्रयास आई.ए.एस. स्टडी सर्किल के निदेशक तथा लोक प्रशासन के लब्ध्प्रतिष्ठ विशेषज्ञ है।

नामांकन जारी
प्रारम्भिक परीक्षा के लिए टेस्ट सीरीज, 20 अप्रैल-2011 से शुरू

निदेशक
डॉ. सी.वी. सिंह
रूद्र सिविल सर्विसेज

202, विराट भवन, एम.टी.एन.एल. विल्डिंग, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-09
09650289809, 09899038193, 09412879525

YH-16/2011

शिल्पी संकुल - बेहतर भविष्य की ओर

● तमाल सरकार

शिल्पियों के स्थायी विकास के लिए उनमें बाज़ार की उचित और स्थायी समझ पैदा करने के लिए नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता है

भारत हस्तशिल्प और हथकरघों का देश है। दसवीं पंचवर्षीय योजना के अंत में हस्तशिल्प क्षेत्र में 67 लाख 70 हज़ार लोगों को रोज़गार मिला हुआ था और 35 लाख हथकरघों पर 65 लाख लोग काम कर रहे थे, जिनमें से 61 प्रतिशत महिलाएं थीं और 35 प्रतिशत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोग थे। इस प्रकार, हथकरघा और हस्तशिल्प क्षेत्र न केवल कृषि के बाद दूसरा सबसे बड़ा रोज़गार देने वाला क्षेत्र है, बल्कि यह देखते हुए कि यह सामाजिक और आर्थिक रूप से कमज़ोर लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति भी करता है, इसका भारी सामाजिक महत्व भी है।

यह जानना दिलचस्प होगा कि समूचा हस्तशिल्प और हथकरघा क्षेत्र भौगोलिक रूप से एक ही स्थान पर संकेंद्रित होता है, जिसे क्लस्टर अर्थात संकुल कहते हैं। पुराने ज़माने में इसे कटरा कहा जाता था। इस तरह के संकुल कहीं-कहीं तो सदियों पुराने हैं। इनमें अधिकतर ऐसे परिवार रहते हैं, जो या तो घरों से ही अपना कारोबार चलाते हैं या फिर पारिश्रमिक पर काम करने वाले श्रमिक रहते हैं। इस प्रकार का प्रत्येक संकुल आसपास के एक ही भौगोलिक क्षेत्र में स्थित होता है, जो या तो कुछ गांवों में फैला होता है या फिर एक कस्बे या एक शहर अथवा उसके आसपास के क्षेत्र में। प्रत्येक संकुल को एक जैसे अवसरों और ख़तरों का सामना करना होता है।

भारत में अनुमानत: 2,682 हस्तशिल्प और 491 हथकरघा संकुल हैं। दोनों ही मामलों में करीब 10 राज्यों में ही दो-तिहाई संकुल बसे हुए हैं। उत्तर प्रदेश हस्तशिल्प और हथकरघा दोनों ही मामलों में सबसे आगे है। अन्य राज्यों में बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान हथकरघा क्षेत्र में; तो ओडिशा, पश्चिम बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश हस्तशिल्प क्षेत्र में अग्रणी हैं। हथकरघा क्षेत्र के प्रमुख उत्पाद हैं– साड़ी, ड्रेस मटीरियल, फर्निशिंग, धोती, लुंगी आदि। हस्तशिल्प क्षेत्र के 2,682 संकुल 24 उत्पाद समूहों के हैं, जिनमें 292 प्रकार के उत्पादों का निर्माण होता है। इनमें 548 कपड़ा, 418 टोकरी, 298 काष्ठ शिल्प, 251 धातु शिल्प और 203 मिट्टी से जुड़े शिल्प शामिल हैं।

शिल्पकारों और शिल्पियों के संकुलों को विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। प्रथमत: अधिकांश संकुल एक बाज़ार आधारित मूल्य शृंखला में काम करते हैं। यहां शिल्पी और उनके क्रेता दोनों ही अच्छी-खासी तादाद में होते हैं और क्रेताओं तथा शिल्पियों के बीच आपस में कोई वैयक्तिक संबंध नहीं होता। कई मामलों में तो शिल्पी अपने को क्रेताओं से अलग कर लेते हैं। पिछले कुछ दशकों से धीरे-धीरे यही सब चलता आ रहा है। पहले तो मशीनीकरण ने हाथ से काम करने वाले कारीगरों की जगह ले ली और फिर बाज़ार में उनकी संख्या कम होती गई। उनका

भारत में हथकरघा संकुलों का फैलाव

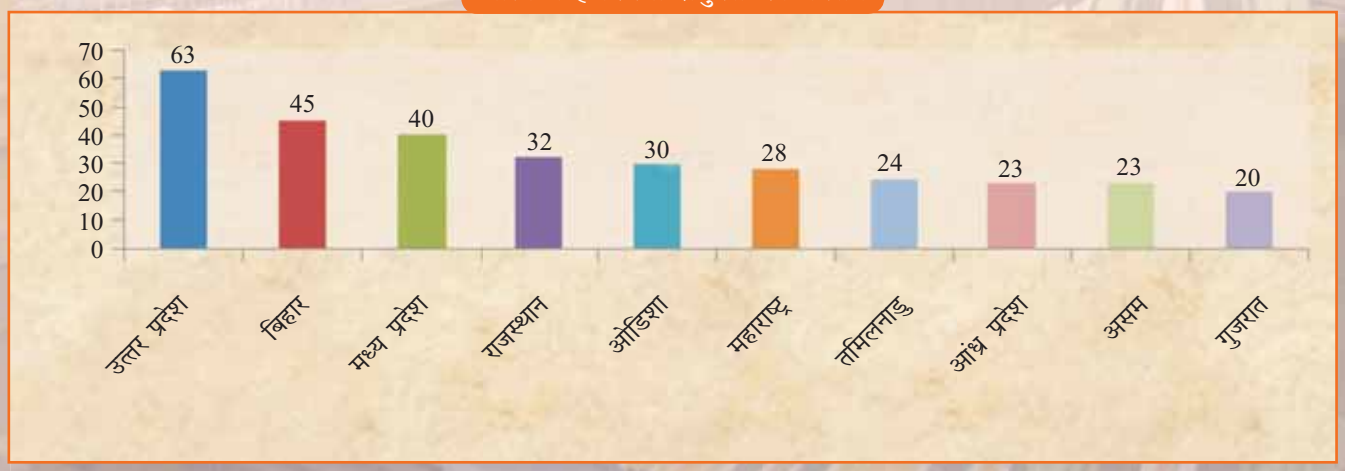

बाज़ार शहरी केंद्रों में चला गया। तदंतर दूरस्थ शहरी बाज़ारों की बदलती आवश्यकताओं ने शिल्पियों के पारंपरिक ज्ञान को अप्रासंगिक बना दिया। नतीज़ा यह हुआ कि इस क्षेत्र में उच्च तकनीक वाले शिल्प उत्पादों के नियंत्रकों एवं प्रबंधकों का प्राकृतिक उद्भव हुआ। इनमें से अधिकतर शहरी मूल के थे, जिन्होंने शिल्पियों को समसामयिक बाज़ार की नयी समझ दी और बाज़ार भी उपलब्ध कराया। इस प्रकार धीरे-धीरे, शिल्पकार जो अपनी (ग्रामीण) जड़ों से पहले ही कट चुके थे, पारंपरिक बाज़ार की समझ के बारे में उनकी जो लाभप्रद स्थिति थी, वह भी धीरे-धीरे आपूर्तिकर्ताओं के हाथ के मोहरे बनकर रह गई। वे शिल्प उत्पादों के सस्ते श्रमिक बन गए।

विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के माध्यम से व्यापार मेलों, क्रेता-विक्रेता सम्मेलनों, डिज़ाइन (रूपांकन) जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से सहभागिता के अनेक प्रयास किए गए हैं, परंतु शिल्पकारों की भारी संख्या और व्यापार के सूत्र जोड़ने में लगने वाले समय को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उक्त कार्यक्रमों की अपनी सीमाएं हैं। प्रथमतः आमतौर पर किसी शिल्पी के लिए ये प्रयास सीमित, अनियमित ही होते हैं। इसके अलावा शिल्पियों की संख्या को देखते हुए, सभी शिल्पकारों को नियमित रूप से बुलाने की गुंजाइश कम ही है। हालांकि शिल्पियों को उपर्युक्त डिज़ाइनें देने के लिए ईमानदारी से प्रयास किए जाते हैं, परंतु दीर्घावधि में इन प्रयासों की सफलता के लिए निरंतरता के जिस तत्व की आवश्यकता होती है, स्वाभाविक है कि वह गायब होती है। इसके लिए भी वही कारण है– शिल्पियों की भारी तादाद और उनके समावेश को लिए बार-बार किए जाने वाले प्रयास।

इस गंभीर चुनौती का एक संभावित समाधान, दीर्घकालीन रणनीति के तहत बाज़ार के प्राकृतिक समन्वयक (फैसिलिटेटर) से संपर्क बनाकर रखना हो सकता है। यहां भी बुनियादी समस्या शिल्पियों का कोई नेटवर्क (संगठन) न होना है। वैयक्तिक स्तर पर कोई शिल्पी इतना माल नहीं बनाता कि नयी पीढ़ी के 'जानकार' क्रेता उससे सीधा संपर्क बना कर रखें। परंतु यदि वे समूह बनाएं तो शिल्पी इन जानकार क्रेताओं के साथ सीधे ही जुड़ सकते हैं, जो उन्हें बाज़ार संबंधी महत्वपूर्ण जानकारियां दे सकते हैं। समय के साथ-साथ जैसे-जैसे ये संबंध परिपक्व होते जाएंगे और महत्वपूर्ण जानकारियां मिलने लगेंगी, शिल्पियों का समूह सीधे बाज़ार से जुड़ने के लिए तैयार हो जाएगा और इस प्रकार वे मूल्य शृंखला में आगे जगह बना सकेंगे। ज्ञान के बेहतर स्तर के साथ वे 'नेटवर्क आधारित मूल्य शृंखला' में महत्वपूर्ण कड़ी सिद्ध होंगे।

शिल्पियों का समूह गठित करने और इन समूहों का मूल्य शृंखला के ऊंचे भागीदारों के साथ प्रारंभिक संपर्क तंत्र कायम करने के लिए शुरू-शुरू में वैकासिक सहायता की आवश्यकता होगी। इन भागीदारों को प्रायः बिचौलिया अथवा मध्यस्थ भी कहा जाता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसके बारे में विकास से जुड़े लोग फूंक-फूंक कर कदम रख रहे हैं। परंतु मध्यम तथा दीर्घावधि में बाज़ार-नीत यह प्रणाली ही शिल्पियों के प्रशिक्षण की पूरी प्रक्रिया का मार्गदर्शन करेगी और उन्हें बाज़ार की समझ तथा ज्ञान उपलब्ध कराएगी जिससे वे उच्चस्तरीय मूल्य शृंखला प्रणाली में स्थान बनाने लायक क्षमता का विकास कर सकें।

यहां यह ध्यान देना होगा कि निज़ी क्षेत्र के साथ इस प्रकार के जुड़ाव को स्वतंत्र एजेंसियों के मज़बूत सहारे की आवश्यकता होगी। पहली बात तो यह है कि यह एक ऐसा समय होगा जब शिल्पी समूहों के बीच एक खास तरह का तंत्र विकसित करने की आवश्यकता होती है जिसके लिए उनकी ओर से काफी बातचीत और समझदारी की ज़रूरत होगी। इस प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाले विवादों के निपटारे का तंत्र तैयार करने की ओर भी ध्यान देना होगा। इसके अतिरिक्त, शिल्पी समूहों में अपनी बात दमदार तरीके से रखने के लिए बातचीत का कौशल विकसित करने की भी ज़रूरत है, अन्यथा वे घाटे का सौदा भी कर सकते हैं।

इस स्थिति में पैसे की उपलब्धता भी एक निर्णायक मुद्दा होगा। शिल्पियों की आर्थिक क्षमता बहुत साधारण होती है और माल की आपूर्ति के बाद वे तत्काल अपने पैसे का भुगतान चाहते हैं। इससे कमतर कोई व्यवस्था होने पर उन्हें अन्य विकल्प तलाशने को विवश होना पड़ सकता है। ऐसी संभावना उस स्थिति में अधिक रहती है जब इस तरह के विकल्प आसानी से उपलब्ध होते हैं और शिल्पी एक

भारत में हस्तशिल्प संकुलों का फैलाव

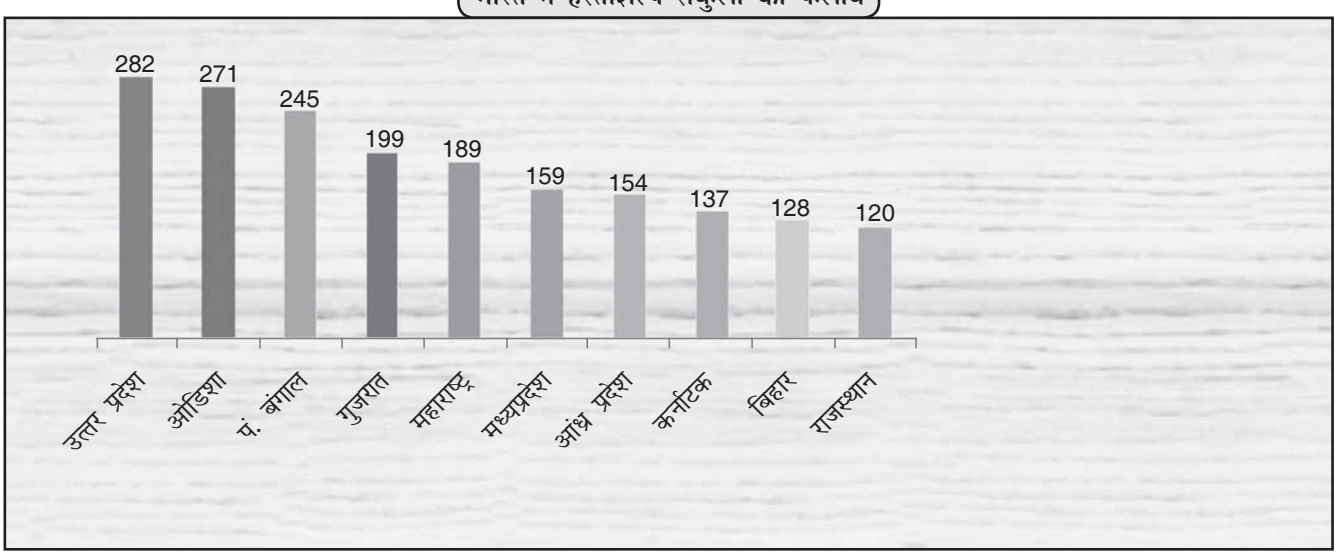

निज़ी क्षेत्र ने चंदेरी को बाज़ार से जोड़ा

चंदेरी में सदियों से हथकरघे से बुनाई होती आ रही है। यह संकुल अपनी आंचलिक बुनावट और डिज़ाइन (रूपांकन) की गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध है। चंदेरी में वर्ष 2003 में 3 हज़ार करघों पर 11 हज़ार बुनकर काम कर रहे थे। करीब 150 बुनकारों ने मिलकर बुनकर विन्यास संस्था (बीवीएस) का गठन किया। फैब इंडिया हस्तशिल्प के खुदरा विक्रय का एक स्थापित प्रतिष्ठान है जिसकी शाखाएं देशभर में हैं। जुलाई 2004 में 'फैब इंडिया की एक प्रमुख क्रेता टीम ने थोक खरीद की संभावनाओं का पता लगाने के लिए चंदेरी का दौरा किया। प्रारंभिक बातचीत और बीवीएस के आकलन के बाद, फैब इंडिया ने चंदेरी में अपना खुद का कार्यालय खोलने का निर्णय लिया और बीवीएस के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। फैब इंडिया के समझौते के अनुसार बीवीएस को पहले वर्ष 50 लाख रुपये के पक्का आर्डर का आश्वासन मिला। उसके बाद प्रतिवर्ष 25 लाख रुपये का आर्डर देने की बात तय हुई। बीवीएस को इस उत्पादन की जिम्मेदारी सौंपी गई जिसके लिए उसे अपने स्वसहायता समूहों से काम लेना था। बीवीएस के सीईओ (मुख्य कार्यपालक) को इस समूचे कार्य का उत्तरदायित्व सौंपा गया और उसके साथ ही विकास के इस काल के दौरान सभी प्रकार के विवादों के निपटारे के लिए एक प्रणाली विकसित करने को कहा गया। फैब इंडिया को 2004 में अनुमानत: 27 लाख रुपये का और 2005 में 42 लाख 40 हज़ार का माल बेचा गया। वर्ष 2006 में यह आंकड़ा बढ़कर करीब 70 लाख रुपये तक पहुंच गया। बिंदुवार विश्लेषण से पता चलता है कि 2004 से 2006 की अवधि में बीवीएस ने पारिश्रमिक दर में अनुमानत: 50 प्रतिशत की वृद्धि की और यह 85 रुपये से बढ़कर 128 रुपये पर पहुंच गई। ❑

ऐसे वातावरण में काम कर रहे होते हैं जहां आजीविका के अनेक साधन मौजूद होते हैं। अत: इस चरण में पूर्ण रूप से उपयुक्त सामूहिक वित्तपोषण व्यवस्था की आवश्यकता होगी। लघु और मध्यम दर्जे के उद्यमियों के विपरीत कुटीर इकाइयां प्राय: अपना माल तैयार करने के लिए आवश्यक कच्चा माल खरीद पाने की स्थिति में नहीं होतीं। अत: उन्हें 'आर्डर डिस्काउंटिंग' के रूप में एक ऐसी वित्तीय योजना की आवश्यकता होगी जिसमें शिल्पियों की एक ऐसी वैधानिक इकाई जिसका खाता बैंक में हो, पंजीकृत इकाई से आदेश प्राप्त करेगी और बैंक से अपना कमीशन काटकर शिल्पियों को भुगतान करेगी। कम से कम यह सुविधा भुगतान के लिए तो होनी ही चाहिए। विकल्प के तौर पर, शिल्पियों के पारिश्रमिक के भुगतान और कच्चे माल की खरीद के लिए शिल्पी समूहों के लिए एक आवर्ती कोष का प्रावधान किया जा सकता है।

प्रौद्योगिकी भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। कई बार तो एक ऐसी उपर्युक्त प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराना एक चुनौती बन जाती है, जो पुरानी प्रौद्योगिकी का स्थान ले सके और उसके बाद भी शिल्पियों की क्षमता प्रभावित न हो। वास्तव में यह एक चुनौती बनती जा रही है, क्योंकि आज की पीढ़ी के शिल्पी परंपरा से चिपके रहने में कोई ज्यादा दिलचस्पी नहीं रखते। इस प्रकार के प्रौद्योगिकीय परिवर्तन अर्थपूर्ण होने चाहिए और उन्हें हस्तशिल्प की आत्मा से छेड़छाड़ नहीं करना चाहिए। साथ ही वह किफ़ायती भी होना चाहिए। इस प्रकार इस क्षेत्र में गंभीर शोध एवं विकास की आवश्यकता है, जिससे नयी-नयी तकनीक को अपनाने का मार्ग प्रशस्त हो सके।

इसके साथ ही बुनियादी ढांचागत सुविधाओं की भी बड़ी आवश्यकता है। परंतु, अधिक लागत वाली बड़ी-बड़ी बुनियादी ढांचागत सुविधाओं के स्थान पर गृह आधारित विकेंद्रीकृत उत्पादन की भावना के अनुरूप अनेक छोटी-छोटी, महत्वपूर्ण और निर्णायक संरचनाओं की आवश्यकता है। शिल्पियों को अपनी पारिवारिक प्रतिबद्धताओं के बीच संतुलन बैठाते समय बड़ी-बड़ी संरचनाएं दूर की कौड़ी लगती हैं।

इस प्रक्रिया में निर्धनतम शिल्पियों का ध्यान रखना भी आवश्यक है। प्राय: ऐसा होता है कि किसी कार्यक्रम के क्रियान्वयन में, बहुधा ऐसे शिल्पी मुखर रहते हैं जो दक्षता, क्षमता और सामाजिक स्थिति के आधार पर बेहतर स्थिति में होते हैं। वे लाभ की बातें तेज़ी से समझ लेते हैं। अत: सामाजिक रूप से निर्बल और महिला शिल्पी जैसे कम समर्थ शिल्पी पीछे रह जाते हैं और उन्हें अनेक सुविधाओं का लाभ नहीं मिल पाता। अत: शिल्पियों की मांगों की आकस्मिकता और विशेष अभियान के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए ख़ासतौर पर ध्यान देने की ज़रूरत है ताकि उनमें निर्बल वर्गों को शामिल किया जा सके। अन्यथा क्रियान्वयन योजना का लाभ सभी लोग नहीं उठा सकेंगे और इस प्रक्रिया से ग़रीबी को ही बढ़ावा मिलेगा।

यहां रूपांकन का महत्वपूर्ण योगदान है। यह एक निर्णायक तत्व है। जैसाकि पहले बताया जा चुका है, मशीनीकरण की प्रक्रिया और राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों से दूरी ने शिल्पियों को, जो परंपरा से डिज़ाइनों का सृजन किया करते थे, दूसरों से डिज़ाइन प्राप्त करने को विवश कर दिया है। इस समस्या के निराकरण के लिए विकास एजेंसियों ने यदा-कदा रूपांकन की सुविधा प्रदान करने का तरीका अपनाया है। परंतु यह कार्यक्रम इस तरह नहीं बनाया गया है जिससे शिल्पी स्थायी रूप से डिज़ाइनर बन सकें। उन्हें नयी-नयी डिज़ाइनें तो मिलती हैं परंतु वे नयी डिज़ाइनों की रचना नहीं कर सकते। अत: शिल्पियों की श्रेणी में से ही डिज़ाइनर तैयार करने का लक्ष्य रखकर गंभीर प्रयास करने की आवश्यकता है। उन्हें शिल्पी होने का गौरव वापस दिलाना होगा।

इस प्रकार, शिल्पियों के स्थायी विकास के लिए उनमें बाज़ार की उचित और स्थायी समझ पैदा करने के लिए नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता है। ❑

(लेखक नयी दिल्ली स्थित फाउंडेशन फॉर एमएसएमई क्लस्टर्स के निदेशक हैं। आलेख में व्यक्त विचार लेखक के व्यक्तिगत विचार हैं।

ई-मेल : tamalsarkar3@gmail.com)

दीक्षांत

समाजशास्त्र

By

DR. S. S. PANDEY

सामान्य & अध्ययन

By

CSAT

DR. S. S. PANDEY & TEAM

हमारे संस्थान के सफल छात्र

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा हेतु नया बैच प्रारम्भ

WORKSHOP

समाजशास्त्र	सामान्य अध्ययन
31 May 4 P.M.	31 May 5 P.M.

MAINS SPECIAL PROGRAMME

• नवीन घटनाओं एवं नवीन सैद्धांतिक विकास के साथ सम्बद्ध करते हुए अध्यापन • प्रश्नोत्तर परिचर्चा कार्यक्रम जिसमें संभावित प्रश्नों के उत्तरों की रूपरेखा पर चर्चा एवं UPSC में पूछे गए 10 वर्षों के प्रश्नों की समीक्षा • राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, समसामयिक व सामाजिक विषयों की तैयारी हेतु विश्लेषणात्मक प्रशिक्षण व्यवस्था • PCS परीक्षा हेतु विशेष कक्षा कार्यक्रम • सामान्य ज्ञान अभिवर्धन पर विशेष बल • NCERT, India Year Book, Economic Survey, Hindu आदि पर आधारित परीक्षण व्यवस्था • त्रिस्तरीय जांच परीक्षा - 1. प्रत्येक दिन Class Test, 2. प्रत्येक सप्ताह Unit Wise Test, 3. Test Series

सीट आरक्षित कराने हेतु भेजे *Registration Fee- Rs. 5,000/- (Adjustable in fee)*

DISTANCE Education Programme

SOCIO MAINS	GS MAINS	GS PT
Rs. 8000/-	Rs. 10,000/-	Rs.5000/-
• Study Material	• Study Material	• Study Material
• Class Notes	• Class Notes	• Class Notes
• 10 Tests	• 10 Tests	• 10 + 10 Tests

Please Send DD in favour of Dikshant Education Centre, payable at Delhi with 2 Passport Size Photographs.

TATA Mc Graw Hill से प्रकाशित पुस्तकें

Monika Vyas	Vineeta Jaiswal	Shashi Kant Kankane	Neelam Kumari	आप भी हो सकते हैं ?
MPPSC	Rank- 31 MPPSC	MPPSC	Rank- 52 BPSC	

Dikshant Education Centre 307-309-310, Jaina Building Extension, Commercial Complex, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009, Ph.: 011-27652723, 9868902785, E-mail: dikshantias2011@gmail.com

YH-15/2011

बुनकरों और हस्तशिल्पियों का स्वास्थ्य और सुरक्षा

● नूपुर बहल

हथकरघा व हस्तशिल्प श्रमिकों सहित समूचे अनौपचारिक क्षेत्र के मौजूदा परिदृश्य पर नज़र डालने से देश में व्यवसायगत स्वास्थ्य और सुरक्षा की सही स्थिति का पता चलता है। यहां व्यवसायगत स्वास्थ्य और सुरक्षा संबंधी मुद्दों की न तो समझ है और न ही श्रमिकों के संरक्षण हेतु उपयुक्त नीतिगत प्रावधान हैं। कानूनी प्रावधान लचर हैं और जो हैं भी उन पर भली-भांति अमल नहीं होता। भोपाल की 1984 की भीषण गैस त्रासदी को विश्व की सबसे बड़ी औद्योगिक विनाशलीला माना जाता है। व्यवसायगत स्वास्थ्य और सुरक्षा के विषय पर कानून बनाने के लिए इसे ही भारत का निर्णायक बिंदु माना जाता है। इस त्रासदी के बाद भारतीय कारखाना अधिनियम, 1987 में महत्वपूर्ण संशोधन किए गए जो मुख्यत: जोख़िम वाले उद्योगों के लिए बनाए गए थे। परंतु अनौपचारिक क्षेत्र में आधारभूत न्यूनतम मानकों की आवश्यकता देश के नीति-निर्धारकों के लिए प्राथमिकता का विषय नहीं रही है। अनुमानत: भारत के हथकरघा और हस्तशिल्प क्षेत्र में क़रीब 1 करोड़ 35 लाख कुशल शिल्पी काम कर रहे हैं। रोज़गार, सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में योगदान और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण जैसे भारतीय अर्थव्यवस्था के विविध क्षेत्रों में इनकी भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। सैकड़ों वर्षों से भारत के पारंपरिक शिल्प के विविध रूपों में काफी बड़े पैमाने पर कुशल कामगार कार्यरत हैं। परंतु इन शिल्पगत व्यवसायों के जोख़िम और ख़तरों को संहिताबद्ध नहीं किया जा सका है। भारत में अधिकांश शिल्पी और कारीगर अपने घरों से ही अथवा 10-12 कारीगरों वाले कुटीर उद्योगों में ही काम करते हैं इसलिए उन पर श्रम कानून लागू नहीं होता।

भारत में व्यवसायगत स्वास्थ्य और सुरक्षा संबंधी कानूनी और नीतिगत प्रावधानों को लागू करने का तरीक़ा काफी कमज़ोर रहा है। कुछ हद तक यह इस कारण भी हो सकता है क्योंकि व्यवसायगत स्वास्थ्य श्रम मंत्रालय का विषय है न कि स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय का। भारत सरकार ने 20 फरवरी, 2009 को कार्यस्थल पर सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संबंधी राष्ट्रीय नीति की घोषणा की थी। इस नीति के अंतर्गत संगठित और असंगठित क्षेत्रों की सभी इकाइयों में सुरक्षित कार्य-पर्यावरण के श्रमिकों के अधिकार के संरक्षण की बात सन्निहित है। असंगठित क्षेत्र में स्वास्थ्य और सुरक्षा के नियमों को वांछित ढंग से अमल में लाना मुश्किल लगता है।

इस आलेख में भारत के हथकरघा और हस्तशिल्प क्षेत्र में व्यवसायजन्य स्वास्थ्य संबंधी ख़तरों का संक्षिप्त विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। इसमें संबंधित आंकड़े इकट्ठा करने, क्षेत्र के लिए प्रासंगिक न्यूनतम सुरक्षा मानक निर्धारित करने, सूचना का प्रचार-प्रसार और प्रभावी क्रियान्वयन व्यवस्था की स्थापना हेतु नेटवर्क के निर्माण के बारे में नीतिगत सुधारों का सुझाव भी दिया गया है।

भारत में हथकरघा और हस्तशिल्पियों का व्यवसायजन्य स्वास्थ्य और सुरक्षा

व्यवसायजन्य स्वास्थ्य का जोख़िम भारत में बीमारियों और मौत के प्रमुख कारणों में से एक है। व्यवसायजन्य सुरक्षा और पर्यावरण के ख़तरों के बारे में जानकारी का अभाव कमज़ोर और हाशिये पर खड़ी श्रमिक जनसंख्या को बुरी तरह प्रभावित करता है। देश के अधिकतर हथकरघा और हस्तशिल्प कारीगर व्यवसायजन्य स्वास्थ्य के ख़तरों से परिचित नहीं हैं। इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि वे असंगठित होते हैं और खुद ही अपने रोज़गार के मालिक होते हैं और दूसरा कारण यह है कि वे चोट और नुक़सान को पारंपरिक व्यवसाय का एक ज़रूरी हिस्सा मानकर चलते हैं। समय के साथ-साथ शिल्पी और कारीगर शिल्प से जुड़े ख़तरों के अनुसार ढल जाते हैं और मास्क, मिक्सर और अन्य सुरक्षा उपकरणों का इस्तेमाल करने लगते हैं। परंतु वे उनके दीर्घकालिक प्रभावों से अनभिज्ञ होते हैं।

पारपंरिक रूप से भारत में हाथ से बने उत्पादों का निर्माण साधारण औज़ारों और

स्थानीय पर्यावरण में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों से किया जाता था। त्वरित आर्थिक विकास, बाज़ार की मांग और उद्योगों की प्रतिस्पर्धा के कारण पारंपरिक उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन आ गया है। पुरानी तकनीकों का स्थान मशीनें, कृत्रिम (गैर-प्राकृतिक) सामग्रियों और रसायनों ने ले लिया है जिससे श्रम और सामग्री की लागत कम हो जाती है। इस बदलाव से श्रमिकों की सुरक्षा और जोख़िम बढ़ गया है।

उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन के साथ ही उससे जुड़े ख़तरों का रूप भी बदल जाता है। ख़तरनाक रसायनों के साथ काम करने से न केवल गंभीर विषैली घटनाओं का रास्ता तैयार होता है, बल्कि समय के साथ-साथ उनके प्रभाव भी दीर्घावधि तक बने रहते हैं। नये-नये औजारों और उपकरणों के उपयोग से भी श्रमिकों को नये-नये ख़तरों का सामना करना पड़ता है। अध्ययनों से पता चलता है कि हस्तशिल्प और हथकरघा उद्योगों में स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाली घटनाओं में से अधिकांश ख़तरों से बार-बार जूझने के दीर्घकालिक प्रभाव के कारण होती हैं। दीर्घकालिक बीमारियों का निदान बड़ा कठिन होता है और जब तक स्थिति गंभीर न हो जाए बीमारी के लक्षण मरीज में दिखाई नहीं देते। उदाहरणार्थ, शिल्पियों और कारीगरों के जीवनकाल में छिड़काव वाले रसायनों का बार-बार काम के दौरान इस्तेमाल करने से त्वचा रोग के साथ-साथ यकृत (गुर्दा) और मस्तिक में ह्रास एवं विकृति हो सकती है।

अनेक अध्ययनों और रिपोर्टों में भारत के श्रमिकों की व्यवसायजन्य स्वास्थ्य एवं सुरक्षा संबंधी विषयों के बारे में चिंता व्यक्त की गई है। लगभग एक दशक पूर्व किए गए अध्ययन (ली और उनके सहयोगी, 1999) के अनुसार भारत में व्यवसायजन्य बीमारियों की घटनाएं प्रतिवर्ष 9,24,700 से 19,02,300 के बीच थीं। चर्म शोधन और वस्त्र उद्योगों के अलावा धातु सामग्री निर्माण जैसे अनेक उद्योगों के अध्ययन से पता चलता है कि इन उद्योगों में श्रमिकों को लंबे समय तक काम करना होता है। नलवारंगकुल (2006) के अध्ययन के अनुसार कालीन निर्माण में लगी 63 प्रतिशत महिलाएं श्वास के रोगों से पीड़ित थीं। उन्हें रेशम और कपास को विरंजित करते समय रसायनों अथवा कपास के रेशों के कारण दमा जैसे श्वास रोग घेर लेते थे। द्वितीय राष्ट्रीय श्रम आयोग (2002) के अनुसार विषैले धुएं, गंध और धूल के सांसों में जाने से चूड़ी उद्योग में फेफड़ों की बीमारियां बढ़ रही हैं। आयोग ने यह भी पाया है कि कपड़ों में ब्लॉक-प्रिंटिंग के लिए रंग-रोगन के इस्तेमाल और हवा-रोशनी के निकास की समुचित व्यवस्था न होने से श्रमिकों के स्वास्थ्य को ख़तरा बना हुआ है। कर्नाटक के रामनगरम ज़िले में वर्ष 2010 में 60 बुनकर रसायन-युक्त रेशम धागे से काम करने के बाद आंख के रोगों और दृष्टिहीनता के शिकार हो गए हैं।

दिल्ली के हेजार्ड्स सेंटर ने 'स्विच एशिया' परियोजना के अंतर्गत हस्तशिल्प क्षेत्र में पर्यावरण, स्वास्थ्य और सुरक्षा के मुद्दों को ध्यान में रखकर एक अध्ययन किया जिसका उद्देश्य उत्पादकों के स्वास्थ्य और पर्यावरण को सुरक्षित बनाने के लिए उत्पादन प्रक्रियाओं में सुधार के लिए आवश्यक क़दमों पर विचार करना था। यह अध्ययन पांच संकुलों में किया गया– छापा (ब्लॉक प्रिंटिंग), चर्म शिल्प (राजस्थान) ब्लूपॉटरी (राजस्थान), ढोकरा (ओडिशा), कांसा (ओडिशा) और ईकत बंधेज बुनाई (पोचम पल्ली, आंध्र प्रदेश)। अध्ययन के अंतर्गत प्रत्येक संकुल में 100 कारीगरों का सर्वेक्षण किया गया और उत्पादन प्रक्रियाओं, श्रमिकों के स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति और पर्यावरण के प्रभाव के बारे में अभिलेख तैयार किए गए। आम धारणा के विपरीत, सरल और कम ख़र्चीले औज़ारों से भी श्रमिकों के व्यवसायजन्य स्वास्थ्य की स्थिति की नाप-जोख की जा सकती है। कोई भी इन उपकरणों का उपयोग कर सकता है और इसके लिए किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। निम्नलिखित श्रेणियों के तहत ख़तरों का अध्ययन किया गया :

- **बॉडीमास इंडेक्स (बीएमआई):** बीएमआई से किसी व्यक्ति के सामान्य स्वास्थ्य का पता चलता है। यह व्यक्ति के भोजन के तौर-तरीक़ों, जीवन-कार्यकारी परिस्थितियों, शारीरिक कार्य की प्रकृति और अवधि पर निर्भर होता है। सर्वेक्षण के निष्कर्षों से पता चलता है कि जिन प्रक्रियाओं में रसायनों, चमड़े और धातुओं का इस्तेमाल होता है, समय बीतने के साथ उनका श्रमिकों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव बढ़ता जाता है। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि जो श्रमिक नियमित रूप से कार्य करते हैं उनका स्वास्थ्य थोड़ी अवधि के लिए ठेके पर काम करने वाले श्रमिकों के मुक़ाबले बेहतर रहता है।
- **फेफड़े का परीक्षण (पीएफटी):** पीएफटी से पता चलता है कि सभी संकुलों में श्रमिकों के स्वास्थ्य की स्थिति चिंताजनक है। फेफड़े के लिए ख़तरनाक माने जाने वाले गैस, वाष्प, रेशों और कणों से भरे माहौल में काम करने वाले श्रमिकों में श्वासनली की बीमारियों की प्रवृत्ति पाई गई। यह स्थिति लंबे समय से चली आ रही है क्योंकि वे कई वर्षों से यही काम करते आ रहे हैं। कामकाज़ के माहौल में धात्विक गंधयुक्त धुओं और उच्च तापमान से सुरक्षा प्रदान करने वाले उपायों के अभाव के कारण कारीगरों के स्वास्थ्य के प्रति ख़तरा बना रहता है।
- **हाथ की पकड़ का परीक्षण (एचजीएम) :** एचजीएम की जांच में अधिकतर कारीगरों की हाथ की पकड़ सामान्य से कमज़ोर पाई गई। हाथ की पकड़ में पाई गई शक्ति की कमी मामूली हरकत और न्यूनतम विश्राम वाले श्रमिकों के श्रमसाध्य कार्य से सीधे जुड़ी हुई है।
- **दृष्टि :** शरीर, फेफड़े और मांसपेशियों पर पड़ने वाले प्रभाव के अलावा बारंबार एक जैसा कार्य दोहराने वाले बारीकी पर लगातार नज़रे टिकाए रहने के कारण श्रमिकों की आंखें भी प्रभावित होती हैं। आंखें मुख्यत: धातु के गंधयुक्त धुंए जैसे रासायनिक पदार्थों और धूलकणों आदि भौतिक तत्वों के सीधे प्रभाव में आने से अधिक ख़राब होती हैं। कार्यस्थल पर कम रोशनी से भी आंखों पर ज़ोर पड़ता है जिससे आंख से पानी निकलने लगता है और दृष्टि ख़राब होती है।
- **दर्द, दुर्घटनाएं, चोट और अन्य स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं:**
  सभी प्रकार के शिल्पियों और कारीगरों के समूहों में अधिकतर कारीगरों के पीठ की मांसपेशियों में दर्द, जोड़ों के दर्द और पेडू में दर्द की शिकायत की जांच के दौरान जो प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहे थे उनमें कड़ापन, धब्बे, कटना, जलना, कंपकपी और त्वचा रोग शामिल हैं। अन्य जो आम शिकायतें पाई गईं उनमें हर्निया, उच्च/अल्प रक्तचाप, नींद और भूख का कम लगना, कमज़ोरी, पेट की गड़बड़ी, आंत्र शोथ, पाचन की कमी

आदि मुख्य हैं। संभव है कि ये बीमारियां भी कार्यस्थल के वातावरण और अनियमित भोजन से हुई हों। कम भूख लगना, सोने में समस्याएं और कमज़ोरी आमतौर पर ज्यादा देर तक काम करने के कारण होती हैं। अधिकांश श्रमिकों में बुखार और टायफायड (मियादी बुखार) का इतिहास पाया गया जोकि दूषित जल के उपयोग और साफ़-सफ़ाई की कमी के कारण होता है। यह समस्या इस तथ्य से और भी जटिल हो जाती है कि अधिकांश कामगार स्थायी नहीं थे और केवल 13 प्रतिशत लोगों को ही कर्मचारी राज्य बीमा निगम और भविष्य निधि जैसी सुविधाएं सुलभ थीं। कार्यस्थलों पर श्रमिकों को शौचालय, विश्राम एवं भोजनकक्ष, ताज़ा हवा के आने-जाने के लिए प्राकृतिक और कृत्रिम निकासी प्रणालियां, पर्याप्त प्रकाश और प्राथमिक चिकित्सा जैसी सुविधाएं थोड़ी-बहुत प्राप्त थीं। शीतल पेयजल और व्यावसायिक कार्य से संबंधित कुछ आवश्यक सुविधाएं भी उपलब्ध कराई गईं थीं। परंतु इनकी मात्रा बहुत सीमित थी और सुरक्षा उपायों के बारे में जागरुकता और क्रियान्वयन की कमी सभी जगह पाई गई।

निष्कर्ष

व्यवसायजन्य स्वास्थ्य और सुरक्षा संबंधी मुद्दों के बारे में देशभर के शिल्प श्रमिकों की जागरुकता का स्तर बढ़ाए जाने की आवश्यकता है। उन्हें सुरक्षा के लिए आवश्यक विधियों और साधनों को अपनाने का सुझाव भी दिया जाना चाहिए। इस प्रकार के कार्य में दो तरह की बाधाएं हैं :

- प्रथम, ख़तरों के बारे में बहुत कम शोधकार्य हुआ है, दूसरे संस्कृति और क्षेत्र में अंतर होने के कारण इस्तेमाल की जाने वाली उत्पादन प्रक्रियाओं, सामग्री और औज़ारों में काफी विविधता है। इसके अलावा, व्यवसायजन्य स्वास्थ्य और सुरक्षा के ख़तरों से बचाव के लिए केवल नियोक्ताओं की सोच में बदलाव लाने की आवश्यकता है। क्योंकि बचाव संबंधी उपायों के लिए अधिक संसाधनों की ज़रूरत नहीं होती। परंतु यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि श्रमिकों को बचाव के जो साधन और उपकरण दिए जाएं उनको वे आसानी से इस्तेमाल कर सकें और उनके कार्य में बाधा न पहुंचाएं।
- असंगठित क्षेत्र (विशेषकर हथकरघा और हस्तशिल्प क्षेत्र) के श्रमिकों की व्यवसायजन्य स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए व्यापक कानून बनाए जाने की आवश्यकता है ताकि विभिन्न उप-क्षेत्रों से संबद्ध आंकड़े इकट्ठा किए जा सकें। क्षमता का विकास हो, नियोक्ताओं, श्रमिकों और नीति-निर्माताओं को समस्या के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए सूचना का प्रसार हो सके। सुरक्षा के मानकों तक पहुंचने के लिए ऐसा कानून बनाना होगा जो लघु स्तर के उद्योगों और कुटीर उद्योगों के श्रमिकों की क्षमता और कौशल के विकास में सहायक हो और उन्हें अधिक जागरूक बना सके। जो लोग घरों में रहकर कार्य करते हैं उन श्रमिकों को जागरूक बनाना बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि वे आमतौर पर किसी प्रवर्तन व्यवस्था के दायरे में नहीं आते, परंतु सुरक्षा उपकरण, समुचित प्रकाश और रोशनदान जैसी बुनियादी समस्याओं से जूझ रहे हैं। व्यवसायजन्य स्वास्थ्य और सुरक्षा की स्थिति में सुधार के लिए कार्य-पद्धतियों के बुनियादी मानकों का प्रचार-प्रसार उद्योग संघों की सहभागिता में किया जाना चाहिए। इससे लघु इकाइयों और श्रमिकों दोनों को अधिक जागरूक बनाया जा सकेगा।

तेज़ी से बदल रहा आर्थिक परिदृश्य भारत में हथकरघा और हस्तशिल्प श्रमिकों के स्वास्थ्य और आजीविका के लिए ख़तरा पैदा कर रहा है। सरकार और उद्योग को उत्पादन प्रक्रियाओं से जुड़े ख़तरों के प्रति जागरुकता फैलाने के लिए मिलकर सक्रिय रूप से काम करना होगा। साथ ही श्रमिकों की रक्षा के लिए प्रत्येक क्षेत्र के लिए न्यूनतम बुनियादी मानक निर्धारित करने होंगे। ❑

(लेखिका अखिल भारतीय शिल्पी और शिल्प-श्रमिक कल्याण संघ में हथकरघा और हस्तशिल्प संबंधी नीतिगत मुद्दों पर काम करती हैं।
ई-मेल : n.bahl@aiacaonline.org)

हथकरघा क्षेत्र द्वारा उत्पादित कपड़ा

वर्ष	हथकरघा क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्त्र	कुल कपड़ा उत्पादन में हथकरघा क्षेत्र का योगदान (प्रतिशत में)	हथकरघा क्षेत्र द्वारा उत्पादित कपड़े का मशीन चालित करघों की तुलना में अनुपात	कुल कपड़ा उत्पादन*
2003-2004	5493	16.2	1:4.91	33874
2004-05	5722	16.1	1:4.95	35573
2005-06	6108	15.9	1:5.01	38390
2006-07	6536	15.9	1:5.03	41161
2007-08	6943	16.0	1:4.97	43265
2008-09	6677	15.9	1:5.04	42121
2009-10	6769	14.9	1:5.41	45374
2010-11 (अक्तूबर 2010 तक)	3770	13.98	1:5.85	26967

** कुल कपड़ा उत्पादन में हथकरघा, मशीनचालित करघा और मिल क्षेत्र का उत्पादन शामिल है। लेकिन इसमें होजियरी, ऊनी तथा रेशमी कपड़ों का उत्पादन शामिल नहीं है।*

खादी क्षेत्र में सुधार

खादी ग्रामोद्योग क्षेत्र में विकास की संभावनाओं की पूर्णतया पहचान करते हुए सरकार ने केवीआईसी (खादी ग्रामोद्योग आयोग) को एशियाई विकास बैंक की सहायता से समग्र खादी सुधार एवं विकास कार्यक्रम (केआरडीपी) शुरू किया है। केआरडीपी खादी को ज्यादा टिकाऊ बनाने, रोज़गार और आमदनी में वृद्धि, कारीगरों के कौशल निर्माण, सशक्तीकरण और बेहतर आमदनी के जरिये उनके बेहतर कल्याण तथा चुनिंदा परंपरागत ग्राम उद्योगों के विकास के साथ खादी ग्रामोद्योग क्षेत्र में नये सिरे से प्राण फूंकने पर बल देता है।

यह कार्यक्रम 300 चुनिंदा खादी संस्थाओं द्वारा तीन वर्ष की अवधि में लागू किया जाएगा जो मार्च 2010 में केवीआईसी (खादी ग्रामोद्योग आयोग) को 96 करोड़ रुपये की पहली किश्त जारी होने के साथ ही पहले ही शुरू हो चुका है। इस कार्यक्रम के तहत सुधार कार्यान्वित कर रही प्रत्येक खादी संस्था (केआई) को निर्धारित सुधार संबंधी गतिविधियां चलाने के लिए क़रीब 1 करोड़ 19 लाख रुपये की सहायता उपलब्ध कराई जाएगी। कच्चे माल के उत्पादन से लेकर बेहतरीन गुणवत्ता और कम लागत वाले खादी उत्पादों, कारगर विपणन, बिक्री संबंधी नेटवर्क, बेहतर वस्तु सूची प्रबंध और बेहतर डिज़ाइनों के रूप में प्रबुद्ध पेशेवर समर्थन से सुधारों की परिकल्पना की गई है। पर्यावरण के अनुकूल परंपरागत उत्पाद वाली खादी की अनूठी ब्रांड छवि 'खादी मार्क' के विकास के माध्यम से नियंत्रित होगी। पूरी सुधार प्रक्रिया में गांधीवादी मूल्य पथप्रदर्शक सिद्धांत बने रहेंगे जिनका ध्यान निरंतरता और विकास पर होगा। केवीआईसी के माध्यम से वर्ष 2009-10 के दौरान और वर्ष 2011-12 में क़रीब 720 करोड़ रुपये ख़र्च किए जाएंगे।

खादी ग्रामोद्योग क्षेत्र के लिए बजट आवंटन वर्ष 2009-10 में 261 करोड़ रुपये के नवीन अनुमान (आरई) से बढ़ाकर वर्ष 2010-11 में 542 करोड़ रुपये कर दिया गया है जिसका अभिप्राय है कि इसमें क़रीब 107 प्रतिशत वृद्धि की गई है।

छूट प्रणाली में सुधार के लिए एमडीए योजना

खादी-हाथ से काते गए सूत से बने वस्त्रों को बढ़ावा देने के लिए गांधी जयंती/स्थानीय त्योहारों के समय 108 दिन के लिए ग्राहकों को 20 प्रतिशत छूट मुहैया कराने की सरकार की प्रणाली हुआ करती थी। सरकार द्वारा अतीत में गठित कई समितियों ने पाया कि केवीआईसी के कामगारों और संसाधनों का बड़ा हिस्सा छूट के प्रबंधन में लगा रहा, जबकि केवीआईसी का मुख्य कार्य क्षेत्र के विकास पर उपयुक्त योजनाओं और कई अन्य हस्तक्षेपों के माध्यम से अधिक बल देना था। खादी की बिक्री पर छूट प्रणाली की जगह 31 मार्च, 2010 तक बाज़ार विकास के लिए उपयुक्त विकल्प शुरू किए जाने का सुझाव दिया गया था।

इसके मद्देनज़र विभिन्न प्रायोगिक परीक्षणों और हितधारकों के साथ केवीआईसी के व्यापक विचार-विमर्श के बाद सरकार ने बिक्री पर छूट की मौजूदा योजना की जगह खादी के उत्पादन पर 1 अप्रैल, 2010 से बाज़ार विकास सहायता (एमडीए) नाम की ज्यादा लचीली योजना शुरू की। इस योजना को केवीआईसी द्वारा वर्ष 2010-11 और 2011-12 में कार्यान्वित किया जाना है। इस योजना में खादी और पॉलीवस्त्र के उत्पादन मूल्य पर 20 प्रतिशत की दर से छूट की परिकल्पना की गई है, जिसे कारीगरों (यानी कताई करने वालों और बुनकरों में), निर्माता संस्थाओं और बिक्रीकर्ता संस्थाओं में 25:30:45 के अनुपात में बांटा जाएगा।

एमडीए की प्रणाली के अधीन बिक्री साल भर एक समान रहने की संभावना है और संस्था इस सहायता का इस्तेमाल ग्राहकों को लाभ या छूट देने के अतिरिक्त कताई करने वालों और बुनकरों की मज़दूरी बढ़ाने, बिक्री केंद्रों और उत्पादों की गुणवत्ता बेहतर बनाने में इस्तेमाल कर सकती है।

छूट योजना की तुलना में एमडीए के लाभ

- एमडीए कताई करने वालों और बुनकरों को समर्थ बनाती है जिसके लिए उनकी सामान्य मज़दूरी के अलावा पहली बार उनके बैंक या डाकघर के खातों के माध्यम से केआई द्वारा हासिल कुल एमडीए की 25 प्रतिशत राशि लंबित नकद छूट के रूप में निर्धारित की गई है।
- छूट प्रणाली के अधीन ग्राहक पर किए जाने वाले ख़र्च का भुगतान केवीआईसी द्वारा अगले साल और वह भी काफी समय के बाद किया जाता था। नतीजन केआई की चालू पूंजी में कमी आती थी

जिसका उत्पादन और कारीगरों की मज़दूरी के भुगतान पर प्रतिकूल असर पड़ता था। एमडीए योजना के तहत सहायता उसी वित्तीय वर्ष में तिमाही प्रदान की जाती है। इसीलिए एमडीए से केआई की चालू पूंजी की स्थिति में सुधार आएगा।

- एमडीए योजना के तहत दावे और समझौते की प्रक्रिया छूट प्रणाली की तुलना में बेहद सरल है।
- एमडीए के अधीन संस्थाओं को यह फैसला लेने की आज़ादी होगी कि वे उत्पादन और विपणन के लिहाज़ से अपने कामकाज़ को बेहतर बनाने के लिए एमडीए के अपने 75 प्रतिशत हिस्से का इस्तेमाल किस प्रकार करें, सिवाय उस 25 फीसदी हिस्से के जो कताई करने वालों और बुनकरों के वित्तीय लाभ के लिए निश्चित किया गया है।
- एमडीए संस्थाओं को उनके उत्पादन की गुणवत्ता को बेहतर बनाने और ग्राहकों को आकृष्ट करने तथा खादी को वाज़िब मूल्यों पर बेचने की ज्यादा संभावनाएं उपलब्ध कराती है क्योंकि ये उत्पाद लागत तालिका प्रणाली की बंदिशों से मुक्त हैं।
- राज्य सरकारें भी राज्य विशेष के लिए एमडीए के अतिरिक्त किसी भी तरह की विशेष छूट या लाभ घोषित करने के लिए स्वतंत्र हैं।

इसके अलावा लंबे अर्से से प्रचलित यह धारणा कि खादी सिर्फ़ ग्राहकों को छूट देकर ही बेची जा सकती है, इस तथ्य के अनुरूप नहीं है कि बिक्री केंद्रों के नवीकरण, बेहतर डिज़ाइन, बेहतर सामान और तक़नीक, प्रशिक्षित और कुशल विक्रेताओं के माध्यम से बेहतर वातावरण मुहैया करवाने जैसे उपाय बिक्री बढ़ाने में अहम भूमिका निभाते हैं। सितंबर 2010 में केवीआईसी द्वारा कराए गए त्वरित आकलन से संकेत मिलता है कि खादी और ग्रामोद्योग क्षेत्र ने अप्रैल से अगस्त 2010 के दौरान उल्लेखनीय रूप से अधिक बिक्री (150 करोड़ 55 लाख रुपये) दर्ज़ की है, जबकि वर्ष 2009-10 की इस अवधि के दौरान यह राशि 141 करोड़ 32 लाख रुपये थी और इसके 2009-10 की बिक्री की तुलना में वर्ष 2010-11 में आठ फीसदी ज्यादा रहने के अनुमान है। संस्थावार भी खादी और पॉलीवस्त्र की कुल बिक्री पिछले साल की इसी अवधि की तुलना में क़रीब 26 प्रतिशत ज्यादा रही। इसी तरह केवीआईसी के खादी ग्रामोद्योग भवन के संबंध में भी पिछले वर्ष की आलोच्य अवधि की तुलना में बिक्री क़रीब 30 फीसदी ज्यादा रही। इतना ही नहीं, जैसाकि पहले कहा गया है, खुदरा क्षेत्र में नये प्रयोग (चंडीगढ़ और सहारनपुर) से बिक्री केंद्रों का नवीकरण करने और नयी प्रणाली से बिक्री में व्यापक उछाल आया है। उपर्युक्त पहलुओं को ध्यान में रखते हुए एमडीए के अभिनव प्रावधानों का प्रभाव एक साल बाद महसूस किए जाने की संभावना है क्योंकि केआई इस बीच एमडीए के अधीन कोष को अपनी ज़रूरत के मुताबिक रणनीतिक रूप से लगाएंगे। उपर्युक्त तथ्य इस बात की ओर इशारा करते हैं कि एमडीए शुरू करने से खादी और खादी उत्पादों की बिक्री में तेज़ी आएगी और ऐसा महज़ छूट की वजह से नहीं बल्कि नवीन प्रोत्साहन उपायों और एमडीए कोष लगाने के संस्था के लचीलेपन की बदौलत होगा जिनसे खादी की बिक्री यकीनन बढ़ेगी।

वर्तमान छूट की जगह एमडीए लागू करने का फैसला सरकार ने आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति की मंजूरी से हितधारकों के साथ व्यापक विचार-विमर्श के बाद लिया है और यह इस क्षेत्र में सकारात्मक क़दम है जो संस्थाओं को पर्याप्त लचीलापन प्रदान करता है और कारीगरों को विकास में कारगर भागीदार बनाता है। एमडीए के नयी योजना होने के नाते सरकार और केवीआईसी ने इसकी विशेषताओं के प्रभावशाली प्रचार के लिए कई उपाय किए हैं। केवीआईसी ने सभी संबद्ध पक्षों को योजना के साथ जोड़ने के लिए विभिन्न हितधारकों के साथ विशेष बैठक आयोजित की है, विज्ञापन दिए हैं और ब्यौरेवार परिपत्र जारी किए हैं। लखनऊ में मई 2008 में राष्ट्रीय खादी सम्मेलन, दिसंबर 2009 से जून 2010 के बीच मेरठ, हुबली और सुरेंद्रनगर, गुजरात में हुए खादी कारीगर सम्मेलनों, साथ-ही-साथ अगस्त-सितंबर 2010 में खादी मिशन प्रतिनिधियों के साथ बैठकों जैसे कुछ ऐसे क़दम उठाए गए हैं जिनमें हितधारकों को एमडीए योजना के लाभ समझाए गए हैं।

चालू वित्त वर्ष में उत्पादित खादी और पॉलीवस्त्र पर एमडीए के भुगतान और वर्ष

2009-10 में बिके खादी और पॉलीवस्त्रों की छूट के लिए वर्ष 2010-11 में 260 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। संस्थाओं को एमडीए के संवितरण के लिए केवीआईसी को 39 करोड़ रुपये की अग्रिम राशि और वर्ष 2009-10 में हुई बिक्री पर छूट के निबटारे के लिए 90 करोड़ 90 लाख रुपये की राशि जारी की गई है, जिससे चालू पूंजी की स्थिति में संस्थाओं को राहत मिलेगी।

लंबित छूट दावे और खादी के बिना भंडार पर विशेष छूट

मंत्रालय 30 मार्च, 2010 तक बिना बिके भंडार पर एकमुश्त वित्तीय लाभ मुहैया कराने पर भी विचार कर रहा है। खादी संस्थाओं के वैध एवं लंबित छूट को जल्द-से-जल्द निपटाने के भी प्रयास जारी हैं।

हितधारकों से परामर्श

हितधारकों की राय इस मंत्रालय के कामकाज में सदैव मार्गदर्शक रही है। विचार-विमर्श और शिकायतें दर्ज़ कराने के लिए राष्ट्रीय खादी ग्रामोद्योग बोर्ड तथा सूक्ष्म, लघु और मझोले उद्योग मंत्रालय राष्ट्रीय बोर्ड सहित अब अनेक मंच उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग मंत्री की अध्यक्षता में तथा सूक्ष्म, लघु और मझोले उद्योग मंत्रालय के सचिव की अध्यक्षता में गठित किए गए दो कोर समूह इस महत्वपूर्ण क्षेत्र के प्रोत्साहन और विकास के लिए तथा नीति निर्माण में हितधारकों की भागीदारी एवं इस क्षेत्र में सरकार की विविध योजनाओं के कार्यान्वयन की निगरानी-समीक्षा के लिए बेहद कारगर माध्यम साबित हुए हैं। ❑

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए रेशम कीट पालन

रेशम कीट पालन, एक कृषि आधारित कुटीर उद्योग है जिसमें ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास की सर्वाधिक संभावनाएं हैं। रेशम उद्योग लाभ वितरण में अहम भूमिका निभाता है, क्योंकि रेशम मुख्य रूप से शहरी अमीरों द्वारा खरीदा जाता है तथा रेशम के वस्त्र का अनुमानतः 61 प्रतिशत अंतिम मूल्य वापस किसानों और बुनकरों तक पहुंच जाता है। पोषक पौधे की खेती और रेशम के कीड़ों के पालन से लेकर वस्त्र और परिधानों की तैयारी से जुड़ी रेशम कीट पालन से संबद्ध विभिन्न गतिविधियों में लगे कामगारों में क़रीब 60 फीसदी महिलाएं हैं। रेशम उद्योग पर्यावरण के अनुकूल, सतत और गहन श्रम वाली आर्थिक गतिविधि है।

रेशम उत्पादन

पिछले तीन दशकों से भारत का रेशम उत्पादन धीरे-धीरे बढ़कर जापान और पूर्व सोवियत संघ देशों से ज्यादा हो गया है, जो कभी प्रमुख रेशम उत्पादक हुआ करते थे। भारत इस समय विश्व में चीन के बाद कच्चे रेशम का दूसरा प्रमुख उत्पादक है। वर्ष 2009-10 में इसका 19,600 टन उत्पादन हुआ था, जो विश्व उत्पादन का 15.5 फीसदी है। भारत रेशम का सबसे बड़ा उपभोक्ता होने के साथ-साथ पांच क़िस्मों के रेशम- मलबरी, तसर, ओक तसर, एरि और मुगा सिल्क का उत्पादन करने वाला देश है और यह चीन से बड़ी मात्रा में मलबरी कच्चे रेशम और रेशमी वस्त्रों का आयात करता है। भारत के रेशम उत्पादन में वर्ष 2009-10 में पिछले वर्ष की तुलना में 7.2 फीसदी वृद्धि हुई। तसर, एरि और मुगा जैसे वन्य सिल्क के उत्पादन में पिछले वर्ष की तुलना में वर्ष 2009-10 में 22 फीसदी वृद्धि हुई। रेशम की इन क़िस्मों का उत्पादन मध्य और पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय लोग करते हैं। वन्य सिल्क को 'पर्यावरण के अनुकूल हरित रेशम' के रूप में बढ़ावा देने और वैश्विक बाज़ार में विशेष बाज़ार तैयार किए जाने की व्यापक संभावना है।

केंद्रीय रेशम बोर्ड

मुक्त बाज़ार व्यवस्था में बाज़ार के अवसरों को ध्यान में रखते हुए वस्त्र मंत्रालय भारतीय रेशम कीट पालन उद्योग और रेशम उद्योग के संपूर्ण विकास के लिए सिर्फ़ उत्पादन बढ़ाने पर ही गौर नहीं कर रहा है, बल्कि गुणवत्तापूर्ण उत्पादन विविधता और उत्पादकता सुधारों के जरिये किफ़ायती मूल्यों पर भी ध्यान दे रहा है। केंद्रीय रेशम बोर्ड निरंतर आवश्यकता पर आधारित किफ़ायती प्रौद्योगिकियां विकसित कर रहा है और आज उसी के प्रयासों की बदौलत, भारत ऊष्ण कटिबंधीय रेशम कीट पालन प्रौद्योगिकी का अगुवा बन गया है। इस प्रौद्योगिकी के साथ बोर्ड ने विशेषतौर पर मलबरी क़िस्मों का क्षेत्र विकसित किया है और अंतरराष्ट्रीय गुणवत्ता वाले रेशम के बिवोल्टाइन ककून (कोसा) के उत्पादन के लिए उपर्युक्त रेशम कीटों की प्रजातियां विकसित की है। बोर्ड स्वतंत्र रेशम कीट पालन गृहों, आधुनिक कीट पालन और कोसा उपकरणों, बंद-बंद सिंचाई किट्स, निजी भंडारणकर्ताओं को ढांचागत सहायता तथा वन्य सिल्क के पोषक पौधों के संवर्धन जैसी अवसंरचना को उन्नत बनाने के लिए उत्प्रेरक विकास कार्यक्रमों का कार्यान्वयन कर रहा है।

बुनकर प्रौद्योगिकी

साथ ही इन कोसों की कताई के लिए केंद्रीय रेशम बोर्ड आधुनिक प्रौद्योगिकी पैकेज की ओर से विविध कार्यों में सक्षम कताई मशीनों से बेहतर कताई पद्धतियों को बढ़ावा दे रहा है। तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक जैसे परंपरागत रूप से रेशम का उत्पादन करने वाले राज्यों में लगाने के लिए चीन से स्वचालित रेशम रीलिंग मशीनें आयात की गई हैं जिनसे बड़े पैमाने पर अंतरराष्ट्रीय श्रेणी की गुणवत्ता वाले आयात स्थानापन्न रेशम का उत्पादन होगा। गुणवत्ता के अनुरूप मूल्यों पर अच्छी गुणवत्ता वाले बिवोल्टाइन कोसों की उपलब्धता बढ़ने से नये उद्यमियों के अलावा परंपरागत बुनकर भी अपनी परंपरागत मशीनों का उन्नयन करने में कारोबार की बेहतर संभावनाएं देख रहे हैं और बेहतर श्रेणी के उत्कृष्ट मलबरी रेशम का उत्पादन करने में सक्षम हो सके हैं।

वन्य रेशम का विकास

वन्य रेशम का विकास एक अन्य ऐसा क्षेत्र है जिस पर बोर्ड ध्यान दे रहा है। नये मशीनीकृत तसर और मुगा कताई और ट्विस्टिंग मशीनें तथा एरि के लिए चरखा बनाने में शोध संस्थानों को मिली कामयाबी ने हाथ से काम की मेहनत कम करने के साथ ही गैर-मलबरी कपड़े की गुणवत्ता में बेहद सुधार किया है। उच्च श्रेणी का स्पन सिल्क बनाने के लिए एरि स्पन सिल्क मिलें लगाई गई हैं। इससे वन्य सिल्क क्षेत्र में उत्पाद विविधता में सहयोग मिला है, जो देश में, विशेषकर जनजातीय इलाक़ों में उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है। पहले से विकसित हो चुकी तकनीकी क्षमताओं के मद्देनज़र बहुत से गैर-परंपरागत राज्य गुणवत्तापूर्ण रेशम कोसे और धागे के उत्पादन में सहयोग के लिए आगे आए हैं। केंद्रीय रेशम बोर्ड ने प्राकृतिक रेस खेती पर लारिया तसर प्रजाति के रेशम कीट पालन का व्यावहारिक परीक्षण किया है और इसके नतीजे काफी उत्साहजनक रहे हैं। यह

(शेषांश पृष्ठ 25 पर)

प्रेरणा के आलोक पुंज

● रचना शर्मा

हथकरघा व हस्तशिल्प को किसी भी सभ्यता का झरोखा कहा जा सकता है। हथकरघा जहां भारतीय संस्कृति का तानाबाना बुनता है, वहीं हस्तशिल्प उसमें रंग भरता है। यह सांस्कृतिक विरासत कमोबेश देश के हर गांव की जिंदगी में रची-बसी है। गांधीजी ने एक बार कहा था कि असली भारत गांवों में बसता है, आज हमें उस भारत को विकसित करने के लिए हस्तशिल्प व हथकरघा को प्रोत्साहित करने की ज़रूरत है।

हथकरघा व हस्तशिल्प के विकास में गांधी मॉडल की भूमिका

विकास के लाख दावों के बावजूद शहरों व गांवों की दूरी मिटी नहीं है। ऐसे में गांवों को मुख्यधारा से जोड़ने के लिए बापू की नीति को फिर से ताज़ा करना ज़रूरी है। गांधीजी ने गांव के लिए हमेशा स्वावलंबन व आत्मनिर्भर आर्थिक नीति पर ज़ोर दिया। उन्होंने ग्रामीण विकास को देश के भविष्य की धुरी बताया था। ग्राम स्वराज की उनकी अवधारणा के तहत, यदि संपूर्ण देश को एक वृत्त माना जाता है, तो निस्संदेह ग्रामीण समाज उसका केंद्र है।

गांधीजी का मानना था कि किसी भी समाज का मुख्य उद्देश्य मानसिक व नैतिक विकास के साथ-साथ मानवीय प्रसन्नता ही होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आर्थिक व राजनीतिक शक्ति का विकेंद्रीकरण ज़रूरी है। यही वजह थी कि बापू ने जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं के उत्पादन व वितरण के विकेंद्रीकरण पर ज़ोर दिया। साथ ही, रोज़गार सुनिश्चित करने के लिए उन्होंने खादी को औज़ार बनाया। खादी देश में हस्तशिल्प व हथकरघा उद्योग का प्रतीक बन गया। यह ऐसा ब्रांड बना जो अभी भी देश की ग्रामीण शक्ति का नमूना पेश करता है। दरअसल, खादी के रूप में गांधीजी ने न केवल हथकरघा को प्रोत्साहित किया बल्कि साबुन, तेल, अगरबत्ती व अन्य ऐसी तमाम देसी वस्तुओं के उद्योग की नयी राह खोल दी, जो न केवल देश की संस्कृति का प्रतीक बने बल्कि लोगों के रोज़मर्रा के जीवन में उपयोगी साबित हुए। देश के ग्रामीण जीवन में सांस्कृतिक विरासत के रूप में रची-बसी हथकरघा व हस्तशिल्प की परंपरा को अब हमें इसी दिशा में आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। यदि सुनियोजित ढंग से इसे प्रोत्साहित किया जाए, तो हथकरघा व हस्तशिल्प उद्योग से न केवल बड़ी संख्या में रोज़गार उत्पन्न होगा बल्कि देश के आर्थिक विकास में भी इसकी खास भूमिका देखी जा सकेगी।

हथकरघा व हस्तशिल्प उद्योग को बढ़ावा देने के लिए स्वदेशी उत्पादों, सेवाओं व संस्थानों को प्राथमिकता देना आवश्यक है। यह वातावरण व पर्यावरण संरक्षण के दृष्टिकोण से भी ज़रूरी हो जाता है। पर्यावरण को तक़नीक व विज्ञान से मिलने वाली चुनौतियों के बीच हथकरघा व हस्तशिल्प की प्रासंगिकता स्वत: ही देखी जा सकती है। यह ऐसा उद्योग है जो पूर्णत: पर्यावरण हितैषी है। यही वजह है कि अब हमें ग्रामीण विकास के गांधीवादी मॉडल की ज़रूरत महसूस हो रही है जो आर्थिक, सामाजिक व नैतिक पहलुओं के साथ-साथ पर्यावरण संबंधी मुद्दों का उत्तर भी प्रदान करता है। इस संदर्भ में टी.एन. खोशू की बात तार्किक लगती है जिन्होंने अपने लेख 'गांधियन एन्वायरमेंटलिज़्म' में लिखा है कि आज भारत के सामने गांधी के ग्रामीण विकास के मॉडल और नेहरू के औद्योगिक विकास मॉडल के बीच रचनात्मक समन्वय स्थापित करने की बड़ी चुनौती है। निस्संदेह, गांधी का मॉडल स्थायी आर्थिक विकास की ओर ले जाता है क्योंकि यह रिन्यूवेबल है, जिससे पर्यावरण को हुए खतरों की भरपाई की जा सकती है। इसीलिए, इसे 'फोटोसिंथेटिक' अथवा 'बायोमास' मॉडल भी कहा जा सकता है।

आत्मनिर्भरता की मिसाल सुआलकुची गांव

गांधी का ग्रामीण विकास का मॉडल महज़ एक विचारधारा नहीं है बल्कि इसे व्यावहारिक तौर पर भी देखा जा सकता है। सुआलकुची गांव इसकी ताजा मिसाल है, जिसे आर्थिक आत्मनिर्भरता के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। ऐसे में यह देखना रुचिकर होगा कि किस प्रकार सुआलकुची ने हथकरघा को न केवल अपनी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में सहेजा है बल्कि ग्रामीण उद्योगों (विशेषकर हथकरघा व हस्तशिल्प) के क्षेत्र में एक नया अध्याय शामिल किया है। निश्चय ही, विकास की एक नयी दिशा यहां से ढूंढी जा सकती है।

सुआलकुची असम में रेशम की बुनाई के लिए जाना-माना नाम है। ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे बसा यह गांव गुवाहाटी से बमुश्किल 35 किमी की दूरी पर स्थित है। लगभग 90 वर्ग किमी क्षेत्र में फैले इस गांव में 52 हज़ार से अधिक आबादी है जिसका हथकरघा मुख्य व्यवसाय है। समुदाय का एक बड़ा हिस्सा चरखे पर मानो प्रसन्नता बुनता दिखाई देता है। शायद यही वजह है कि सुआलकुची को 'पूरब का मैनचेस्टर' कहा जाता है। यहां के लोगों ने इस परंपरा को सामुदायिक तौर पर आर्थिक व्यवसाय के रूप में कुछ इस प्रकार ढाला कि अब यह अपने रेशम के कपड़े के लिए अंतरराष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर रहा है।

इस गांव में रेशम बुनने की परंपरा का इतिहास पाल वंश के समय का है। दरअसल, 11वीं सदी में पाल वंश के राजा धर्म पाल ने इस कला को प्रोत्साहन दिया और बुनकरों

के 26 परिवारों को तांतीकुची से सुआलकुची बुलवा लिया। आज भी यह गांव उस परंपरा का निर्वहन कर रहा है। खास बात यह है कि डिज़ाइन में सर्जनात्मकता ढालकर यहां के बुनकर बाज़ार की आधुनिक मांग भी बखूबी पूरी कर रहे हैं। इसके लिए ग्रामीणों को समय-समय पर सरकारी सहयोग भी मिलता रहा है। सुआलकुची गांव के साथ-साथ कामरूप जिले के कुछ अन्य क्षेत्रों के बुनकरों के लिए स्वयंसेवी समूहों की तर्ज़ पर शुरू की गई आईपीपी योजना इसका एक उदाहरण है। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ फैशन टेक्नोलॉजी (कोलकाता) के सहयोग से चलाई गई इस योजना के तहत, एक सौ स्वयंसेवी समूहों को बाज़ार की आधुनिक ज़रूरतों की पूर्ति के लिए प्रशिक्षित किया गया। सुआलकुची के कारीगर अब अपने कौशल व प्रशिक्षण के साथ-साथ समय-समय पर सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों द्वारा आर्थिक मदद से ऐसी वस्तुएं बना रहे हैं, जो न केवल उनकी कला का बेहतर नमूना है बल्कि रोज़मर्रा की ज़िंदगी में उसकी खासी उपयोगिता भी है।

आंकड़ों पर नज़र डालें तो सुआलकुची में लगभग 1,700 रेशम बुनकर हैं जो हर दिन विविध प्रकार के रेशमी कपड़े तैयार करते हैं। यहां हर दिन मेखला चादर, रिहा, धारा, दारा चादर, गमछे व साड़ियां नये रंग व आकार पाती हैं। सुआलकुची का यह फलता-फूलता उद्योग वर्षभर बुनाई व उससे जुड़ी अन्य गतिविधियों के जरिये लगभग 25,000 लोगों को रोज़गार मुहैया कराता है। यदि सुआलकुची में रेशम की खपत और रेशमी कपड़ों के उत्पादन संबंधी आंकड़ों की बात करें तो मौजूदा समय में यहां मलबरी रेशम की वार्षिक खपत दो लाख किलो है। जबकि मूंगा व रेशम की अन्य क़िस्मों की खपत 98,000 किलो है। असम में रेशम की कुल खपत लगभग 4,39,000 किलो है। असम में रेशमी कपड़े का कुल उत्पादन लगभग 42,19,055 मीटर है, जिसमें से 31 लाख मीटर का उत्पादन अकेला सुआलकुची करता है।

सुआलकुची के इस हुनर और पारंपरिक डिज़ाइनों में उकेरी गई विलक्षण कला को विश्व पटल पर लाने के लिए सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाएं नयी मीडिया तक़नीक की मदद भी ले रही हैं। इस संदर्भ में इंटरनेट वेबसाइट www.sualkuchisilkbazar.in को उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है। यह गैर-सरकारी संस्था एवीए द्वारा प्रस्तुत किया गया ई-कॉमर्स समाधान है। इसके तहत, सुआलकुची की कला को इंटरनेट के जरिये जहां वैश्विक पहचान मिल रही है, वहीं हुनरमंदों को व्यापार संबंधी प्रोत्साहन भी प्राप्त हो रहा है।

सुआलकुची अपने उद्योग के लिए मलबरी रेशम कर्नाटक और चीन से मंगवाता है। किंतु हाल में व्यापार संबंधी नीतियों में किए गए बदलावों व कच्चे माल की बढ़ी क़ीमतों के कारण सुआलकुची का हथकरघा उद्योग भी प्रभावित हो रहा है। ऐसे में इस उद्योग को सुदृढ़ करने के लिए सरकारी सहयोग ज़रूरी है।

मिसाल कायम करने को तैयार उत्तराखंड का हथकरघा व हस्तशिल्प उद्योग

हथकरघा (ऊन, रेशम व प्राकृतिक रेशे) एवं हस्तशिल्प (लकड़ी व बांस आदि की कलाकृतियां) उत्तराखंड की परंपरा का एक हिस्सा है। उत्तराखंड में हरसिल, बेलची व मेरीनो आदि उम्दा क़िस्म की ऊन, पशम (बकरी से प्राप्त) व अंगोरा (खरगोश से प्राप्त) भारी मात्रा में उपलब्ध रहता है। इस प्रकार, राज्य के सीमावर्ती क्षेत्रों में रह रहे लोग परंपरागत रूप से भेड़ पालन व ऊन उत्पादन करते हैं। पशम मुख्यतया तिब्बत में मिलता है जबकि अंगोरा प्राप्त करने के लिए उत्तरकाशी, चमोली, टिहरी, गढ़वाल व बागेश्वर में खरगोश पाले जाते हैं। मलबरी रेशम उत्पादन मुख्यतया तराई व मैदानी इलाक़ों में एवं तसर रेशम पहाड़ी क्षेत्रों में पाया जाता है। राज्य में कई ज़िलों, जैसे– उधमसिंहनगर, हरिद्वार व देहरादून में सूती कपड़ा बुनने का काम भी परंपरागत रूप में किया जाता रहा है। इन ज़िलों में काशीपुर, जसपुर व महुआडाबरा (उधमसिंहनगर), रामपुर व कलसी (देहरादून), इमलीखेड़ा (हरिद्वार) व खटीमा (चंपावत) हथकरघा उद्योग के मुख्य गढ़ के रूप में देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार, यह राज्य हथकरघा व हस्तशिल्प उद्योग से जुड़ी तमाम संभावनाओं को पूरा करता दिखता है। विभिन्न सरकारी संगठनों व योजनाओं का सहयोग भी इस दिशा में महत्वपूर्ण है। मसलन, उत्तराखंड भेड़ एवं ऊन विकास बोर्ड, खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड द्वारा स्थापित ऊन बैंक क्षेत्रीय लोगों को आधारभूत आर्थिक व ढांचागत सुविधाएं मुहैया कराता है। साथ ही, ये संस्थाएं नस्ल सुधार के क्षेत्र में अनुसंधान व प्रशिक्षण, भेड़ों के रखरखाव व स्वास्थ्य संबंधी जानकारियां व ऊन उत्पादन से जुड़ी नयी तक़नीक व प्रशिक्षण भी मुहैया कराती हैं।

दीनदयाल हथकरघा योजना के तहत 26 बुनकर सहकारी समितियों को आधुनिक डिज़ाइन, बेहतर गुणवत्ता व कलात्मक वस्तुओं की उपयोगिता बढ़ाने से संबंधी प्रशिक्षण दिया जा रहा है। इतना ही नहीं, राज्य में लगभग 40 क़िस्म के प्राकृतिक रेशों को हथकरघा व हस्तशिल्प द्वारा नया रूप दिया जा रहा है। इस दिशा में उत्तराखंड बांस एवं रेशा विकास बोर्ड से मिल रहे सहयोग व प्रशिक्षण से स्थानीय लोग लाभान्वित हो रहे हैं। यह संस्थान ऊन, रेशम व कपास को प्राकृतिक रेशों के साथ मिलाकर नित नये सफल प्रयोग कर रहा है। इससे पारंपरिक कला व आधुनिक तक़नीक के मेल से उत्पादों की शृंखला में भी लगातार विस्तार हो रहा है।

आर्थिक संभावनाओं से परिपूर्ण मधुबनी चित्रकला

मधुबनी चित्रकला अथवा मिथिला पेंटिंग बिहार के मिथिला क्षेत्र की एक समृद्ध परंपरा है। यह भारतीय चित्रकला की ऐसी शैली है जिसे अगर और व्यावसायिक बनाया जाए तो यह विदेशी आय का एक बड़ा स्रोत बनकर उभर सकती है। यह न केवल ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक है बल्कि महिला सशक्तीकरण का एक कारगर औज़ार भी साबित हो सकती है क्योंकि परंपरा के अनुसार, मधुबनी कला से जुड़ी तमाम गतिविधियां महिलाएं ही करती हैं।

पारंपरिक तौर पर मधुबनी चित्रकला ग्रामीण घरों के बाहर, मिट्टी से लेपी गई दीवारों पर की जाती थी। अब इसे कपड़ों, कागज़ की लुगदी से बने सामानों व अन्य वस्तुओं पर भी उकेरा जाता है। मधुबनी कला कई सदियों से सीमित दायरे में ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है। यही वजह है कि आधुनिकता में ढल जाने का लचीलापन होने के बावजूद इस कला की विषयवस्तु एवं शैली में मौलिकता बरकरार है। अब भी मधुबनी चित्रों में इस्तेमाल किए जाने वाले रंग फूल-पत्तियों, गेरू व काजल आदि से लिए जाते हैं।

मधुबनी पेंटिंग में अधिकतर प्रकृति का चित्रण मिलता है। इनकी विषयवस्तु मुख्यतया देवी-देवताओं की आकृति के इर्द-गिर्द घूमती है। इसके अलावा, दरबार के चित्र, सामाजिक

उत्सवों जैसे– विवाह आदि का चित्रण भी लोकप्रिय है। मधुबनी चित्रों की खूबी यह है कि इनमें कोई भी जगह खाली नहीं छोड़ी जाती और महीन कलाकारी के साथ-साथ फूल, पौधों, पक्षियों, वन्यप्राणियों के साथ कई बार ज्यामितीय डिज़ाइनों का मेल भी देखने को मिल जाता है। इस प्रकार यह कहना गलत नहीं होगा कि मधुबनी चित्रकला परंपरा व आधुनिकता का अनूठा नमूना पेश करती है। इस हस्तशिल्प में यदि थोड़ी प्रयोगात्मकता डाल दी जाए, तो यह ग्रामीण समाज की तस्वीर बदल सकती है।

हस्तशिल्प व हथकरघा के क्षेत्र में उठाए गए क़दम व सुझाव

हस्तशिल्प व हथकरघा के जरिये आर्थिक वृद्धि की जो संभावनाएं हमारे देश में हैं, उतनी शायद ही किसी अन्य देश के पास हो। हमारे देश का लगभग हर राज्य वहां की संस्कृति व परंपरा से जुड़ा है। क्षेत्र इतनी व्यापकता व विविधता प्रदान करता है, जो हमेशा इसमें नयापन बनाए रखती है। अन्य किसी भी उद्योग की भांति हथकरघा व हस्तशिल्प उद्योग भी इससे जुड़े लोगों को आत्मनिर्भर बना सकता है बशर्ते इसे निजी भागीदारी के साथ-साथ सरकारी संस्थाओं से समय-समय पर आर्थिक सहयोग व तकनीकी प्रशिक्षण मिलता रहे। इस क्षेत्र में कुछ सरकारी प्रयास शुरू भी किए गए हैं। उदाहरण के तौर पर, बुनकरों को कच्चे माल की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए हैंक यार्न ऑब्लिगेशन ऑर्डर, हथकरघा बुनकर समेकित कल्याण कार्यक्रम, राजीव गांधी शिल्पी स्वास्थ्य बीमा योजना, महात्मा गांधी बुनकर बीमा योजना आदि हथकरघा क्षेत्र के लिए तथा राजीव गांधी शिल्प स्वास्थ्य योजना हस्तशिल्प के क्षेत्र में काम कर रहे कारीगरों के कल्याण व स्वास्थ्य से जुड़ी कुछ योजनाएं हैं।

इसके अलावा, सरकार ने सन् 2008-09 में चुनिंदा हथकरघा क्षेत्रों के संपूर्ण व सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखते हुए संकुल विकास नीति अपनाई। सन् 2009-10 में इसके तहत 52 नये हथकरघा समूहों को आधुनिक आवश्यकताओं से संबंधित प्रशिक्षण दिया गया। शहरी पटल पर ग्रामीण शिल्प व हथकरघा को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से 20 हाट स्थापित किए गए हैं। इसके साथ ही, समय-समय पर व्यापार मेले व प्रदर्शनी भी आयोजित किए जाते रहे। फिर भी, इस उद्योग को शक्तिशाली बनाने व गांधीजी के स्वप्न को साकार करने की दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए हमें कुछ और उपाय करने होंगे और यह भी सुनिश्चित करना होगा कि उन पर निरंतर अमल किया जाए। इस दिशा में कुछ सुझाव यहां प्रस्तुत हैं:

- **कृषि, उद्योगों, संस्थाओं, फैशन डिज़ाइनर आदि में समन्वय :** हालांकि इस दिशा में कुछ सामूहिक प्रयास पहले भी देखे जा चुके हैं, किंतु इसका पूरा लाभ तभी मिल सकता है जब यह समन्वय सर्वांगीण रूप से समानता के साथ स्थापित किया जा सके।
- **हस्तशिल्प व हथकरघा को पर्यटन का हिस्सा बनाया जाए :** ग्रामीण शिल्पियों एवं बुनकरों के लिए अधिक आय अर्जित करने की दिशा में ऐसे गांवों को ग्रामीण पर्यटन व पर्या-पर्यटन के अहम हिस्से के रूप में प्रोत्साहित किया जा सकता है। निस्संदेह पर्यटक कला के बेहतरीन नमूनों को देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं और यह सोचने के लिए बाध्य हो जाते हैं कि आखिर इन्हें बनाया कैसे गया है। यदि पर्यटन के तहत इन क्षेत्रों को प्रचार मिले, तो यहां पर्यटक तो बढ़ेंगे ही, लोगों की आय में भी इजाफा होगा।
- शिल्पकारों व बुनकरों को तक़नीक संबंधी प्रशिक्षण व सरकारी योजनाओं से अवगत कराने के लिए समय-समय पर कार्यशालाओं का आयोजन भी लाभकारी साबित होगा।
- हथकरघा व हस्तशिल्प उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए मीडिया संस्थानों, जैसे– विज्ञापन एवं दृश्य प्रचार निदेशालय द्वारा अधिक प्रभावी ढंग से प्रचार गतिविधियां सुनिश्चित की जाएं। इसमें निजी मीडिया संस्थानों व मीडिया शिक्षण संस्थानों का सहयोग भी लिया जा सकता है।
- इन विशेष ग्रामीण क्षेत्रों को विशेष आर्थिक क्षेत्र की तर्ज़ पर भी विकसित किया जा सकता है। प्रस्तावित 'विशेष हस्तशिल्प क्षेत्र' अथवा 'विशेष कला क्षेत्र' हस्तशिल्प के प्रशिक्षण, निर्माण व उत्पादन व उनसे जुड़ी तमाम व्यावसायिक गतिविधियों के साथ-साथ हस्तशिल्प व हथकरघा पर्यटन के गढ़ के रूप में स्थापित किए जा सकते हैं। ❑

(लेखिका इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, नयी दिल्ली में सहायक प्रोफेसर हैं।
ई-मेल : rachna_130@yahoo.co.in)

(पृष्ठ 22 का शेषांश)

परीक्षण वर्ष 2012 में समाप्त होने वाली 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान होने वाले 3,987 टन तसर सिल्क उत्पादन को मार्च 2017 में समाप्त होने वाली 12वीं पंचवर्षीय योजना में बढ़ाकर 8,000 टन तक ले जाने की व्यापक संभावना दर्शाता है।

नीतिगत हस्तक्षेप

नीतिगत हस्तक्षेप की दिशा में उठाए गए कुछ कदमों से केंद्रीय रेशम बोर्ड अधिनियम में संशोधन हुआ है। अन्य चीज़ों के अलावा यह सुधार रेशम कीट के लार्वा के लिए गुणवत्तापूर्ण मानक, रेशम कीट लार्वा का प्रमाणीकरण इनके आयात और निर्यात के लिए गुणवत्ता मानक मुहैया कराता है। केंद्रीय रेशम कीट लार्वा विनियम हाल ही इस उद्देश्य के लिए अधिसूचित किए गए हैं। चीन से आयातित रेशमी वस्त्र और धागे पर डंपिंग रोधी शुल्क लगाया गया है जिससे घरेलू रेशम उद्योग में रेशमी धागे और कपड़े के दामों में स्थिरता लाने में मदद मिली है। राष्ट्रीय तंतु नीति तैयार की गई है जिसमें गुणवत्ता और उत्पादकता में सुधार लाने के लिए शोध एवं विकास सशक्त बनाने पर जोर दिया गया है। रेशम कीट उद्योग हाल ही में राष्ट्रीय कृषि विकास योजना में शामिल किया गया है ताकि योजना के लाभ रेशम कीट उद्योग से जुड़े किसानों तक भी पहुंचाए जाएं। छोटे बुनकरों की मदद के लिए उच्च श्रेणी का 2,500 टन रेशम राष्ट्रीय हथकरघा विकास निगम के माध्यम से चीन से आयात किया जा रहा है और उसे किफ़ायती दामों पर वितरित किया जाएगा।

आज भारतीय रेशम गुणवत्ता और उत्पादकता के क्षेत्र में लंबी छलांग भरने और अल्पावधि में ही राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय रेशम उपभोक्ताओं की विविध प्रकार की ज़रूरतें पूरी करने के लिए तैयार है। इससे जेनरिक प्रोत्साहन प्रयासों की बदौलत 'इंडिया सिल्क' का ब्रांड तैयार करने में मदद मिलेगी। ❑

उनकी शहादत को स

शहीदी दिवस, 23 मार्च

ंह, सुखदेव और राजगुरू
सलाम
सत्यमेव जयते
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार
22111/13/0059/1011

YH-5/11/3

राजस्थान में हस्तशिल्प

● चंद्रभान यादव

राजस्थानी हस्तशिल्प को प्राचीन काल से ही सबसे उम्दा माना गया है। यहां के लोगों की कलात्मक अभिरुचि देखते बनती है। राजस्थान में न सिर्फ कुशल हस्तशिल्पी हैं बल्कि यहां का वातावरण भी लोगों को इस दिशा में प्रोत्साहित करता है। जयपुर के मूल्यवान रत्न, मीनाकारी, नक्काशी, पत्थर की प्रतिमाएं और ब्लू पॉटरी, लाख की चूड़ियां, बाड़मेरी, सांगानेरी और बगरू की हाथ की छपाई, नागफी, जोधपुर की कढ़ाईदार जूतियां, बंधेज ओढ़नी, चंदन की लकड़ी के खिलौने, खस के बने पानदान, कोटा की डोरिया साड़ियां आदि भारत ही नहीं पूरी दुनिया में विख्यात हैं और इसका पूरा श्रेय जाता है कारीगरों को। उनकी मेहनत, लगन की बदौलत ही राजस्थान हस्तशिल्प के मामले में सिरमौर बना हुआ है। अगर हम इतिहास पर गौर करें तो हस्तकलाओं का इतिहास भी मानव सभ्यता से जुड़ा हुआ है। जैसे-जैसे मानव सभ्यता का विकास हुआ वैसे-वैसे हस्तकलाएं भी विविध रूपों में निखरती गईं।

कालीबंगा की खुदाई में मिले मिट्टी के कलात्मक बर्तन, मूर्तियां आदि राजस्थानी हस्तकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। इसी तरह 15वीं शताब्दी में डूंगरपुर से कुछ कुषाण कालीन वस्त्र, कास्ट प्रतिमाएं आदि मिलीं जिससे राजस्थानी हस्तकलाओं के इतिहास के बारे में जानकारी मिलती है। वास्तव में राजस्थान की हस्तकलाओं का इतिहास यहां की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से जुड़ा है। राजपूत के बाद मुगल काल में भी राजस्थानी हस्तकलाओं को खूब प्रोत्साहन मिला। लेकिन अंग्रेज़ों का शासनकाल हस्तकलाओं के लिए बुरा वक्त था। इसके बाद यहां की स्थिति और ख़राब तब हुई जब बंटवारे के समय मुस्लिम हस्त शिल्पी पाकिस्तान का रुख कर लिए। इसकी वजह से राजस्थानी हस्तकलाओं का पराभव होने लगा। लेकिन कुछ समय बाद ही केंद्र एवं राज्य सरकारें सक्रिय हुईं। स्वतंत्रता के बाद लघु उद्योग निगम और हस्तशिल्प बोर्ड सहित विभिन्न संस्थाओं की स्थापना हुई। हस्तकला को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न तरह की योजनाएं चलाईं गईं। इन योजनाओं से हस्तकला को एक बार फिर प्रोत्साहन मिला और अद्यतन स्थिति काफी मज़बूत है। राजस्थान के गठन के समय राज्य की औद्योगिक विकास की गति कमज़ोर थी, लेकिन प्रथम पंचवर्षीय योजना में राज्य में लघु उद्योग एवं कुटीर उद्योग पर विशेष ध्यान दिया गया। अब एक बार फिर राजस्थानी हस्तशिल्प दुनिया का सिरमौर बना हुआ है। राजस्थान आने वाले पर्यटक यहां की हस्तकला को खूब पसंद करते हैं। जयपुर की मीनाकारी ने पूरी दुनिया में अपनी पहचान बनाई है। उदयपुर, जोधपुर एवं जयपुर की हाथी दांत से बनी वस्तुएं पूरे विश्व में मशहूर हैं।

लकड़ी, हाथीदांत एवं चंदन के कार्य

आमेर महल के सहाग मंदिर में स्थित चंदन के दरवाज़े पर 17वीं शताब्दी में हाथीदांत पर की गई पच्चीकारी आज भी मौजूद है। हालांकि अब चंदन की लड़की उपलब्ध न होने की वजह से यह काम साधारण लकड़ी पर भी किया जाता है। लकड़ी के कार्यों में हाथी, देवी-देवताओं की मूर्तियां,शृंगार पेटियां, कलमदान, चौकियां, पलंग के पाए, झूले आदि हैं। डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, भीलवाड़ा तथा उदयपुर में लकड़ी के खिलौने के साथ ही मकानों की छतों में भी लकड़ी के काम दिखाई पड़ते हैं। इसके अलावा उदयपुर एवं सवाई माधोपुर में बनने वाले लकड़ी के खिलौने बहुत प्रसिद्ध हैं। उदयपुर व पाली की हाथी दांत की चूड़ियां विश्व प्रसिद्ध हैं।

ब्लू पॉटरी

राजस्थान में ब्लू पॉटरी का काम मुगलकाल में शुरू हुआ। यह आगरा और दिल्ली से जयपुर पहुंचा, जो आज भी जयपुर के प्रमुख हस्तशिल्प के रूप में प्रसिद्ध है। मुगलों से पहले चीन एवं पारस में ब्लू पॉटरी की परंपरा थी। ब्लू पाटरी में बड़े फूलदान से लेकर छोटे राखदान तक शामिल हैं। इसके अलावा मिट्टी एवं चीनी मिट्टी के बर्तनों को भी इसमें शामिल किया गया है। अलवर में कागज़ी नामक स्थान पर बनने वाले बर्तनों को आज भी लोग बहुत पसंद करते हैं। इसी तरह जयपुर में चीनी मिट्टी के खिलौने आकर्षण का केंद्र होते हैं। इन खिलौनों पर विभिन्न रंगों की कलात्मक डिज़ाइन देखते ही बनती है। बीकानेर में सुनहरी कला वाले चीनी मिट्टी के कलात्मक व सजावटी बर्तन खूब पसंद किए जाते हैं।

पीतल की नक्क़ाशी

राजस्थान की हस्तकलाओं में पीतल की नक्क़ाशी का कार्य प्रसिद्ध है। यहां यह काम 16वीं सदी से ही होता रहा है। इस कला से प्रभावित राजा मानसिंह ने इस काम को करने वाले कलाकारों को खूब बढ़ावा दिया। राजस्थान के अलावा पंजाब एवं उत्तर प्रदेश से भी नक्काशी कलाकारों को यहां बुलाया और उन्हें प्रश्रय दिया। इन दिनों यह काम जोधपुर में ज्यादा हो रहा है।

रंगाई-बुनाई एवं छपाई

राजस्थान में कपड़ों पर रंगाई, बुनाई और छपाई का काम विस्तृत पैमाने पर होता है। यहां ऐसा कोई शहर नहीं, जहां यह काम नहीं होता हो। इसमें बंधाई का काम ज्यादातर स्त्रियां करती हैं, जबकि रंगाई और छपाई का काम पुरुष। कपड़ा नगरी के रूप में पहचाने जाने वाले भीलवाड़ा व कोटा में तो यह काम होता ही है, साथ ही जयपुर के सांगानेर, पाली, बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर को रंगाई एवं छपाई वाले शहर के रूप में माना जाता है। यहां छपाई लकड़ी के ठप्पों से होती है। बीकानेर का लहरिया विश्व प्रसिद्ध है। इसी तरह किशनगढ़, चित्तौड़, कोटा में

होने वाली सुनहरी छपाई देश-विदेश में अपना स्थान रखती है। वस्त्रों पर कशीदे के कार्य में भी राजस्थान की अपनी विशिष्ट पहचान है। यह कार्य काफी कलात्मक होता है। राजस्थानी कशीदाकारी एवं छपाई कला के प्रतीक के रूप में केरी, कमल, मोर, हाथी और ऊंट की डिजाइन बनाई जाती है।

राजस्थानी बंधेज

राजस्थानी बंधेज बहुत प्रसिद्ध है। जयपुर, जोधपुर, सीकर और झुंझुनूं में यह काम बहुत बड़े पैमाने पर होता है। चुंदड़ी और लहरिया पर यह काम विशेष रूप से होता है। इसमें डिज़ाइन के अनुसार महिलाएं धागे से वस्त्रों पर घुंडियां बांधती हैं। इसके बाद इसे अलग-अलग रंगों में रंगा जाता है और फिर सूखने के बाद कपड़े को खींचकर घुंडियां हटा दी जाती हैं। इस तरह बंधेज तैयार हो जाती है। विभिन्न स्थानों से राजस्थान आने वाली महिलाएं बंधेज साड़ी ख़रीदना नहीं भूलतीं।

ऊन उत्पादन

राजस्थान ऊन उत्पादक राज्यों में प्रमुख है। यहां का ऊन कुछ तो राज्य में ही प्रयोग किया जाता है, जबकि आधे से अधिक हिस्से का निर्यात किया जाता है। बीकानेर एवं मालपुर क्षेत्र को ऊन उत्पादन के लिए पहचाना जाता है। कहा जाता है कि मालपुरा में बने ऊनी चमका या घूघी में पानी प्रवेश नहीं कर पाता है एवं बीकानेर का ऊनी सर्ज विश्व प्रसिद्ध है। इसके अलावा जयपुर, जोधपुर, अजमेर कंबल निर्माण का केंद्र हैं। जोधपुर, नागौर, टोंक, बाड़मेर, शाहपुरा आदि स्थानों पर निर्मित दरियां विदेशों में निर्यात की जाती हैं। इसके अलावा गलीचे का काम जयपुर, ब्यावर, किशनगढ़, टोंक, मालपुरा, केकड़ी, भीलवाड़ा, कोटा आदि स्थानों पर किया जाता है। अजमेर, जयपुर और खंडेला में गोटा का काम लघु उद्योग का रूप ले चुका है।

राजस्थानी टेराकोटा कला

राजस्थानी टेराकोटा कला का हस्तशिल्प में विशेष स्थान है। राजस्थान में नाथद्वारा के पास मोलेला गांव टेराकोटा के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। मोलेला की मिट्टी में एक-चौथाई गोबर मिलाकर उसको ज़मीन पर थाप दिया जाता है और फिर हाथ और साधारण औज़ार से इस पर विभिन्न तरह की आकृतियां बनाई जाती हैं। सप्ताहभर बाद उसे गेरु से रंगा जाता है। मारवाड़ में ईसरगोल, ढोला-मारू, घुड़सवार आदि बनाए जाते हैं। टेराकोटा के तहत मटकों और सुराहियों पर कलात्मक कृतियां उकेरी जाती हैं।

बीकानेरी उस्ता कला

बीकानेर को ऊंटों की नगरी कहा जाता है। यहां की उस्ता कला विश्व प्रसिद्ध है। उस्ता कला के तहत ऊंटों की खाल पर स्वर्ण नक्काशी का सुंदर कार्य किया जाता है। चूंकि ऊंट के खाल अब कम मिल पाते हैं इसलिए अब यह काम कांच एवं लकड़ी की वस्तुओं पर भी किया जाता है। बीकानेर में इसका प्रशिक्षण केंद्र भी है।

लाख की चूड़ियां

जयपुर एवं सूर्यनगरी जोधपुर को लाख के काम के लिए भी जाना जाता है। यहां की लाख की चूड़ियां बहुत पसंद की जाती हैं। लाख से चूड़ियों के अलावा खिलौने, हिंडोले आदि भी बनाए जाते हैं। लाख की चूड़ियों पर कांच एवं मोती आदि चिपकाकर डिज़ाइन तैयार की जाती है। अब इससे पशु-पक्षी, पेंसिल एवं खिलौने भी बनाए जाते हैं।

नाथद्वारा की मीनाकारी

राजस्थान का नाथद्वारा शहर मीनाकारी के लिए प्रसिद्ध है। मीनाकारी का कार्य मूल्यवान रत्नों, सोने व चांदी के आभूषणों पर किया जाता है। मीनाकारी में फूल, पत्ती, मोर आदि का अंकन किया जाता है। जयपुर में सोने के आभूषणों और खिलौनों एवं अन्य आभूषणों पर भी मीनाकारी की जाती है। यह पक्की भी होती है और कच्ची भी। कच्ची मीनाकारी जयपुर में पीतल के बर्तनों एवं खिलौने पर ज्यादा होती है। प्रतापगढ़ की प्रसिद्ध थेवा कला को भी मीनाकारी का ही रूप माना जाता है। शीशे पर सोना मढ़कर यह कलाकृतियां वहां का राजसोनी परिवार बनाता है।

राजस्थानी मूर्तिकला

राजस्थान के जयपुर-अजमेर मार्ग पर अवस्थित मकराना में संगमरमर की खानें हैं। यहां से निकलने वाले सफेद संगमरमर पत्थर पूरे देश में भेजे जाते हैं। यहां आसानी से पत्थर उपलब्ध होने के कारण मूर्तिकला का भी खूब विकास हुआ। इसी तरह डूंगरपुर से हरा, काला, तलवाड़ा, छिंछ, आवलापुरा, धमोतर से सफेद संगमरमर, धौलपुर से लाल, भरतपुर से गुलाबी, जोधपुर से बादामी पत्थरों से बनी मूर्तियां पूरे देश में पहुंचती हैं। इसके अलावा विभिन्न रंगों के संगमरमर से खिलौने बनाए जाते हैं।

चर्म कला

राजस्थान पशुधन के मामले में सबसे समृद्ध राज्य है। पशुओं की अधिकता की वजह से चर्म कला का भी यहां खूब विकास हुआ। यहां चमड़े के जूते पर नक्काशी करके उसे आकर्षक बनाया जाता है। इसके अलावा चमड़े के मशक, चड़स, घोड़े, बटुए आदि बनाए जाते हैं। जयपुर एवं जोधपुर में यह कार्य ज्यादा होता है। इसके अलावा यहां से चमड़ा साफ करके कानपुर, आगरा और चेन्नई भेजा जाता है।

हस्तकलाओं को प्रोत्साहित करने के प्रयास

राजस्थान में विभिन्न तरह की हस्तकलाओं को प्रोत्साहित करने के प्रयास लगातार किए गए। इन कलाओं से जुड़े कलाकारों को न सिर्फ़ प्रोत्साहित किया गया बल्कि उनकी मेहनत का उचित मूल्य दिलाने के लिए भी सरकार ने गंभीरता दिखाई। जयपुर एवं उदयपुर में शिल्पग्राम की स्थापना की गई ताकि हस्तशिल्पियों एवं इनसे जुड़े कारोबारियों को अपने उत्पाद बेचने के लिए उचित मंच मिल सके। हस्तशिल्प विकास आयुक्त कार्यालय की ओर से वर्ष 1965 से राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कार दिया जाता है। इसके तहत 25 हज़ार नगद, ताम्रपत्र, प्रशंसापत्र आदि दिया जाता है। राजस्थान के हस्तशिल्पियों की कला का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि वर्ष 1966 से अब तक सौ से अधिक हस्तशिल्पियों को राष्ट्रीय पुरस्कार मिल चुका है। इसी तरह वर्ष 1983 से राज्य सरकार की ओर से हस्तशिल्पियों को पुरस्कृत करने की भी योजना चल रही है। इसके तहत राजस्थान लघु उद्योग निगम पुरस्कृत शिल्पी को पांच हज़ार नगद की सहायता प्रदान करता है। इसके अलावा अन्य श्रेष्ठ शिल्पियों को एक हज़ार रुपये का नगद पुरस्कार दिया जाता है।

हस्तशिल्पियों के उत्थान के प्रयास

हस्तशिल्पियों के उत्थान के लिए राजस्थान सरकार की ओर से भी कई योजनाएं चलाई जा रही हैं। इसके तहत जहां बुनकरों को शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास जैसी सुविधाएं मुहैया कराई जा रही हैं, वहीं उनकी कला को विश्व मंच पर स्थापित करने की भी कोशिश जारी है। राज्य सरकार ने हस्तशिल्पियों के विकास के लिए कई कल्याणकारी योजनाओं की घोषणा की है। इतना ही नहीं गत वर्ष हथकरघा वस्त्रों की 1,564.32 लाख रुपये की बिक्री हुई। चालू वित्तीय वर्ष 2011-12 का बजट पेश करते

हुए मुख्यमंत्री ने हस्तशिल्पियों के लिए पूर्व में चल रही योजनाओं के विस्तार के साथ ही कई अन्य नयी योजनाओं की घोषणा की है। सरकार ने प्रधानमंत्री रोज़गार योजना के तहत इस वर्ष लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों की संख्या बढ़ाकर 1,088 कर दी है। इसी तरह ऊनी खादी का उत्पादन लक्ष्य सात करोड़, सूती खादी 13 करोड़ एवं ग्रामोद्योग का 80 करोड़ का लक्ष्य रखा है। इसके साथ ही खादी उद्योग में 2,600 लोगों एवं ग्रामोद्योग में 10,000 लोगों को रोज़गार देने का निश्चय किया गया है। अन्य प्रमुख योजनाएं निम्नलिखित हैं:

–स्मार्ट केंद्र की स्थापना

वन मंत्रालय की एकीकृत दक्षता विकास योजना के तहत भीलवाड़ा, भिवाड़ी, पाली, बालोतरा एवं जोधपुर में 10 स्मार्ट केंद्र स्थापित किए जा रहे हैं। इनके जरिये 12 हज़ार युवाओं एवं महिलाओं को प्रशिक्षित कर वस्त्र उद्योग के क्षेत्र में रोज़गार मुहैया कराने की योजना है।

–महिलाओं को दक्षता प्रशिक्षण

राज्य में हथकरघा एवं हस्तशिल्प से जुड़ी महिलाओं को दक्षता प्रशिक्षण देने में वरीयता दी जा रही है। इस वर्ष बाड़मेर ज़िले के चोहटन एवं शिव में हस्तशिल्प, कसीदाकारी आदि कार्यों से जुड़ी महिलाओं समूह गठित कर उन्हें प्रशिक्षित किया जा रहा है। साथ ही उनके उत्पाद के विपणन की भी व्यवस्था की जा रही है।

–ऑनलाइन पंजीयन

राजस्थान के हस्तशिल्पियों और दस्तकारों के संरक्षण के लिए रूडा में डाटाबेस तैयार किया गया और अब दस्तकारों का ऑनलाइन पंजीयन किया जा रहा है। वेबसाइट पर दस्तकारों से संबंधित योजनाएं एवं उनके आवेदन पत्र जारी कर दिए जाने से उन्हें काफी सहूलियत मिली है। अब उन्हें विभिन्न योजनाओं के लिए कार्यालयों का चक्कर नहीं काटना पड़ता है।

–नगरीय एवं ग्राम हाटों का विकास

हस्तशिल्पियों एवं अन्य कारीगरों की ओर से बनाई जाने वाली वस्तुओं के विपणन के लिए प्रदेश में नगरीय एवं ग्रामीण हाटों का विकास किया जा रहा है। अलवर, सीकर में 90 लाख की लागत से नगरीय हाट का निर्माण कराया गया है।

–शिल्प एवं माटीकला बोर्ड

प्रदेश में 10 अक्तूबर, 2009 को शिल्प एवं माटीकला बोर्ड का गठन किया गया। यह बोर्ड शिल्प एवं माटीकला से जुड़े कारीगरों के पुनर्वास एवं उत्थान के लिए कई योजनाएं चला रहा है। कुशल श्रमिकों, हस्तशिल्पियों के प्रशिक्षण के बाद उन्हें कम ब्याज पर ऋण भी उपलब्ध कराया जाता है।

–रूडीसेड की स्थापना

परंपरागत तरीक़े से हस्तकला से जुड़े युवाओं को तकनीकी रूप से प्रशिक्षित करने की योजना चल रही है। इसके तहत राज्य में आठ रूडीसेट स्थापित किए गए हैं। जहां युवाओं को नि:शुल्क प्रशिक्षण दिया जाता है और प्रशिक्षित युवाओं को स्वरोज़गार के तहत बैंक ऋण पर दो फीसदी का अनुदान दिया जाता है। अब तक करीब 40 हज़ार हस्तशिल्पियों को प्रशिक्षित कर उन्हें परिचय पत्र जारी किया गया और 20 हज़ार को क्रेडिट कार्ड भी जारी किए गए हैं। उद्यमिता विकास प्रशिक्षण में 3,144, चर्म प्रशिक्षण में 340 और गृह उद्योग में 6,831 महिलाओं को प्रशिक्षण दिया गया।

–कोटा-डोरिया संरक्षण

कोटा का डोरिया वस्त्रों के उत्पादन में गति लाने के लिए तकनीकी सुधार की दिशा में कई महत्वपूर्ण कार्य किए गए हैं। बुनकरों को परंपरागत तरीक़े के प्रिंट लूम के स्थान पर उन्नत लूम पर बुनाई का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। इससे उत्पादन का ग्राफ बढ़ा है।

–सोर्सिंग हब की स्थापना

राजस्थान सरकार की ओर से अजमेरी गेट में सोर्सिंग हब की स्थापना की गई है। इससे दस्तकार अब अपने उत्पाद का जहां प्रदर्शन कर सकते हैं, वहीं उनकी बिक्री की भी सुविधा है। इसी तरह शिल्पग्राम सहित विभिन्न स्थानों पर हस्तनिर्मित उत्पादों की बिक्री की व्यवस्था की गई है।

–बुनकरों का बीमा

बुनकरों को नयी स्वास्थ्य बीमा योजना का लाभ दिया जा रहा है। इसके तहत बीते वित्तीय वर्ष में 8,835 बुनकरों का बीमा कराया गया। महात्मा गांधी बुनकर बीमा योजना के तहत 2,760 बुनकरों का बीमा कराया गया। स्टॉल शुल्क रियायत योजना के तहत 656 व्यक्तियों को 22.95 लाख की रियायत दी गई।

एफडीडीआई की स्थापना

जोधपुर में फुटवीयर डिज़ाइन एवं डेवलपमेंट इंस्टीट्यूट की स्थापना के लिए केंद्र सरकार की ओर से वर्ष 2010 में स्वीकृति जारी की गई थी। एफडीडीआई की स्थापना से चर्म कला का विकास एवं आधुनिक डिज़ाइन के फुटवीयर का निर्माण संभव हो सकेगा।

पांच नये संकुल

राज्य में ऑटो कम्पोनेंट क्लस्टर (संकुल)– अलवर, हथकरघा संकुल राजपुरा-पातलवास, जयपुर, पीतल के बर्तन पर नक्काशी– बालाहेड़ी एवं दौसा, मारबल संकुल– छितौली, जयपुर, सैंड स्टोन संकुल– पिचूपाड़ा, दौसा में शुरू किए गए हैं। इससे पहले पॉटरी एवं टैराकोटा क्लस्टर गोगुंदा, उदयपुर एवं हैंड ब्लॉक प्रिंटिंग संकुल बगरू एवं जयपुर में चल रहे हैं। इस तरह अब राज्य में कुल 33 संकुलों में हस्तशिल्प संबंधी विकास कार्य चल रहे हैं।

राजस्थान स्टेट हैंडलूम डेवलपमेंट कार्पोरेशन

राजस्थान स्टेट हैंडलूम डेवलपमेंट कार्पोरेशन के जरिये हस्तकला एवं हैंडलूम के विकास को गति मिली है। इसके तहत गत वर्ष 1,691.34 लाख के वस्त्रों की बिक्री की गई। निगम ने प्रदेश की हथकरघा वस्त्र कला, ब्लॉक प्रिंट, प्राकृतिक रंगों पर आधारित फैशन एवं उच्च वर्ग की आवश्यकतानुसार 430 क़िस्मों के नये वस्त्र परिधान विकसित करके बाज़ार में उतारे। इस प्रयोग से बुनकरों, दस्तकारों को प्रोत्साहन मिला। निगम की ओर से सालभर में क़रीब 60 मेले एवं प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया। इससे भी हस्तकला से जुड़े लोगों को लाभ हुआ।

राजस्थान बुनकर सहकारी संघ

इसके जरिये मुंबई, दिल्ली, जोधपुर, कोटा, उदयपुर सहित विभिन्न स्थानों पर स्थित बिक्री केंद्रों का नवीनकरण एवं साज-सज्जायुक्त बनाया गया। संघ की ओर से उत्पादित हथकरघा वस्त्रों की पैकेजिंग को भी आकर्षक रूप दिया गया है। बुनकर संघ की ओर से दिसंबर 2008 से 2010 तक 2,415.73 लाख की बिक्री की गई।

राजस्थान खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड

प्रधानमंत्री रोज़गार सृजन कार्यक्रम के तहत 1,531 ग्रामोद्योग इकाइयां स्वीकृत की गईं। खादी क्षेत्र में 5,477 व्यक्तियों को एवं ग्रामोद्योग क्षेत्र में 13,748 व्यक्तियों को रोज़गार दिया गया। बोर्ड की ओर से 13.35 करोड़ का ऊनी खादी एवं 47.6 करोड़ के सूती खादी वस्त्रों का उत्पाद किया गया। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं
ई-मेल : chandrabhan0502@gmail.com)

21वीं सदी में हथकरघा

● गिरीश चंद्र पांडेय

कुल वस्त्र उत्पादन में हथकरघा क्षेत्र का योगदान लगभग 15 प्रतिशत है। इसलिए 21वीं सदी में इसकी उपयोगिता स्वयंसिद्ध है

हथकरघा हमारी एक ऐसी धरोहर है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती रही है। इससे न केवल देश की समृद्धि तथा विविधता के दर्शन होते हैं बल्कि यह बुनकरों की कलाकारी की अद्वितीय मिसाल है। हथकरघा हमारी सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है। यह कृषि के बाद सबसे बड़ा रोज़गार सृजक क्षेत्र है। कुल वस्त्र उत्पादन में हथकरघा क्षेत्र का योगदान लगभग 15 प्रतिशत है। इसलिए 21वीं सदी में इसकी उपयोगिता स्वयंसिद्ध है। उदारीकरण के मौजूदा दौर में, जबकि भारत को विश्व बाज़ार के साथ जुड़ने का मौका मिला है और विदेशों से मुक़्त व्यापार समझौते हो रहे हैं, ऐसी स्थिति में हमारी यह सांस्कृतिक धरोहर विभिन्न देशों के बीच एक सेतु का काम कर सकती है और देश की आर्थिक संपन्नता में मददगार साबित हो सकती है। लेकिन वर्तमान में यह क्षेत्र कई समस्याओं से जूझ रहा है, मसलन- पुरानी प्रौद्योगिकी, असंगठित उत्पादन प्रणाली, कम उत्पादकता, अपर्याप्त कार्यशील पूंजी, परंपरागत उत्पादन प्रणाली, कमज़ोर विपणन संपर्क तथा इन सबसे ऊपर विद्युत करघा और मिलों से उत्पन्न प्रतिस्पर्द्धा आदि।

हथकरघा क्षेत्र के विकास हेतु सरकार के प्रयास

11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान इस क्षेत्र के लिए एकीकृत हथकरघा विकास योजना, हथकरघा बुनकर कल्याण योजना, विपणन और निर्यात संवर्धन योजना, मिलगेट क़ीमत योजना तथा विविधीकृत हथकरघा विकास योजना जैसी पांच महत्वपूर्ण योजनाएं केंद्र सरकार द्वारा चलाई जा रही हैं। जून 2006 से प्रारंभ हथकरघा मार्क का प्रयोजन क्रेता को यह गारंटी प्रदान करना है कि उसके द्वारा खरीदा जा रहा उत्पाद वास्तव में हस्तनिर्मित है न कि विद्युत या मिल निर्मित। हथकरघा एजेंसियों को उनके उत्पादन की बिक्री बढ़ाने हेतु दिल्ली में एक विश्वस्तरीय हथकरघा विपणन परिसर का निर्माण भी किया जा रहा है जो घरेलू तथा अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में हथकरघा उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए एक मंच का काम करेगा। केंद्र सरकार ने हथकरघा क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए उत्कृष्ट बुनकरों को वर्ष 2009 से प्रतिवर्ष संत कबीर पुरस्कार देने का निर्णय लिया है। इसके साथ ही 6 लाख रुपये तक की वित्तीय सहायता भी दी जाती है। समय-समय पर भारतीय वस्त्रों पर डाक टिकट जारी करना, हथकरघा सप्ताह के अंतर्गत अनेक संवर्धनात्मक और जागरुकता कार्यक्रमों का आयोजन, हथकरघा एक्सपो, फैशन शो आदि के आयोजन के अतिरिक्त देश में 25 बुनकर सेवा केंद्रों के साथ ही 5 भारतीय हथकरघा प्रौद्योगिकी संस्थान भी बुनकरों को प्रशिक्षण प्रदान कर उनकी कुशलता उन्नयन तथा उत्पादकता में महत्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं। कहना न होगा कि सूक्ष्म, लघु तथा

मध्यम उद्यम मंत्रालय की हथकरघा उद्योग के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह भी हक़ीक़त है कि सूक्ष्म तथा लघु उद्यम से जुड़े बुनकरों की आर्थिक हालत अच्छी नहीं है। सिडबी तथा नाबार्ड उनके लिए ऋण व्यवस्था का प्रभावी माध्यम बन सकते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए सरकार ने वर्ष 2011-12 के बजट में सिडबी हेतु ₹ 5,000 करोड़ का प्रावधान किया है जबकि पिछले वर्ष यह राशि ₹ 4,000 करोड़ थी। हथकरघा बुनकरों की आर्थिक स्थिति की ओर सरकार का ध्यान भी गया है। कई हथकरघा बुनकर ऋण की अदायगी हथकरघा बुनकर सहकारी सोसायटियों को करने में अक्षम रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप ये सोसाइटियां वित्तीय दृष्टि से क़मजोर हैं, इसलिए नाबार्ड को चरणबद्ध तरीक़े से इन सहकारी सोसाइटियों को 3,000 करोड़ रुपये उपलब्ध कराना प्रस्तावित है। इस पहल से 15,000 सहकारी सोसाइटियां तथा लगभग 3 लाख बुनकर लाभान्वित होंगे।

यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि केंद्र सरकार के राष्ट्रीय दक्षता विकास परिषद के माध्यम से 15 करोड़ कामगारों को दक्ष बनाने का निर्धारित लक्ष्य वर्ष 2022 से पहले प्राप्त करने की संभावना है। इस परिषद ने 658 करोड़ रुपये के कुल निधि पोषण सहित 26 परियोजनाएं पहले स्वीकार कर ली हैं। इन परियोजनाओं से ही 4 करोड़ से अधिक क़ामगार आगामी 10 वर्षों में तैयार हो जाएंगे। केंद्र सरकार द्वारा अगले बजट में इस परिषद हेतु 500 करोड़ रुपये की अतिरिक्त सहायता का भी प्रस्ताव है। इसलिए इन दक्ष कामगारों को भी हथकरघा क्षेत्र की ओर मोड़ने का प्रयास किया जाए तो निश्चित तौर पर हथकरघा उद्योग के सशक्तीकरण को बल मिलेगा। इसके साथ ही बाज़ार आवश्यकताओं के अनुरूप हथकरघा बुनकरों तथा कारीगरों का दक्षता उन्नयन भी ज़रूरी है।

इन सबके बावजूद इस क्षेत्र के विकास हेतु अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

कैसे सशक्त हो हथकरघा क्षेत्र

हथकरघा क्षेत्र के लिए दो घटक सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं– पहला, कच्चे माल के रूप में कपास और दूसरा बुनकर। यदि बुनकरों के लिए समुचित मात्रा में कच्चे माल की आपूर्ति सुनिश्चित कर दी जाए तो काफी हद तक इस क्षेत्र की समस्या सुलझ सकती है। वैश्विक दृष्टि से भारत में कपास उत्पादन क्षेत्रफल की दृष्टि से सर्वाधिक है तथा उत्पादित कपास की दृष्टि से यह दूसरा सबसे बड़ा देश है। बावजूद इसके देश में कपास की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता तथा गुणवता की समस्या प्रमुख है इसलिए इस ओर ध्यान देना ज़रूरी है। कपास प्रौद्योगिकी मिशन को और सक्रिय बनाते हुए प्रौद्योगिकी उन्नयन निधि योजना के अंतर्गत हथकरघा क्षेत्र में बड़ी मात्रा में निवेश की ज़रूरत है ताकि इसके आधुनिकीकरण का मार्ग प्रशस्त हो सके। जहां तक बुनकरों की समस्याओं के समाधान का प्रश्न है, उन्हें समूहों में हथकरघा से संबद्ध बुनियादी जानकारी, बुनाई-रंगाई और डिज़ाइन तथा प्रबंधकीय विषयों में प्रशिक्षण प्रदान कर एवं उनके लिए वर्कशेड निर्माण कर सुलझाया जा सकता है। हथकरघा बुनकरों के लिए कई कल्याणकारी योजनाओं का प्रारंभ करने की ज़रूरत है। समय-समय पर अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय, अंतरराज्यीय तथा जिलास्तरीय प्रदर्शनियों और शिल्प मेलों का आयोजन, शहरी हाटों की स्थापना, विपणन परिसरों तथा डिज़ाइन स्टूडियो आदि की स्थापना तथा हथकरघा मार्क को अधिकाधिक लोकप्रिय बनाने पर ज़ोर देते हुए हम इस दिशा में पहल कर सकते हैं। बुनकरों के समक्ष वित्त समस्या के समाधान में स्वसहायता समूहों की उल्लेखनीय भूमिका हो सकती है। चूंकि भारतीय हथकरघा प्रौद्योगिकी संस्थानों के अलावा निफ्ट तथा हैंडलूम हाउस की हथकरघा के प्रचार-प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका है इसलिए अपेक्षित है कि देश में ऐसे संस्थानों की संख्या में और बढ़ोतरी हो। हथकरघा निर्यात संवर्धन परिषद के सुदृढ़ीकरण के साथ ही सरकार को हथकरघा निर्मित कपड़ों पर विशेष छूट प्रदान करनी चाहिए ताकि अधिकाधिक लोग इसे अपनाने के लिए प्रेरित हों।

दृष्टिकोण

इस प्रकार हथकरघा क्षेत्र को कुटीर उद्योग के रूप में और सशक्त बनाना समय की मांग है। भारत का विशाल मानव संसाधन इस उद्योग हेतु परिसंपत्ति का कार्य कर सकता है, बशर्ते उसे इस क्षेत्र में समुचित प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। ग्रामीण अंचलों में खादी तथा ग्रामोद्योग को पुनर्जीवित करना होगा। यह हथकरघा उद्योग के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर इसे रोज़गार सृजन का प्रभावी माध्यम बना सकता है। स्मरण रहे कि खादी तथा ग्रामोद्योग की इकाइयां देश में अभी एक करोड़ से अधिक लोगों को रोज़गार देने में समक्ष हैं। ❑

ग्रामीणों को स्वावलंबी बनाता भदोही का कालीन उद्योग

● अखिलेश चंद्र यादव

पूर्वी उत्तर प्रदेश के दक्षिणी छोर पर बसे इलाक़ों में न तो उपजाऊ जमीन है और न ही कोई बड़ा कल-कारखाना। बावजूद इसके इस इलाक़े को उत्तर प्रदेश की औद्योगिक नगरी के रूप में पहचाना जाता है। इसका मूल कारण यहां का कालीन उद्योग है जो संत रविदास नगर जिले के औराई कस्बे के पास माधोसिंह नामक स्थान से शुरू हुआ और आज गांव-गांव तक कुटीर उद्योग के रूप में पहुंच चुका है। संत रविदासनगर ही नहीं दक्षिण में मिर्जापुर और उत्तर में जौनपुर जिले के मड़ियाहू तहसील के विभिन्न गांवों तक इसका व्यापक असर देखा जा सकता है। यहां बने कालीन दुनियाभर में पसंद किए जाते हैं। यही वजह है कि भारत से होने वाले कालीन निर्यात का 80 फीसदी इसी इलाके से जाता है। भदोही कस्बा पहले वाराणसी का हिस्सा था। आगे चलकर नये जिले के रूप में संत रविदासनगर का गठन हुआ। इस गठन के पीछे भी मूल कारण भदोही ही रहा। अब भदोही शहर के पश्चिम में इलाहाबाद है तो पूरब में वाराणसी, दक्षिण में मिर्जापुर तो उत्तर में जौनपुर। आवागमन की दृष्टि से रेल एवं सड़क मार्ग दोनों की समुचित सुविधा है। भदोही और मिर्जापुर की कार्यसंस्कृति एक जैसी ही है। आस-पड़ोस के इलाक़े में भी इसकी छाप दिखती है।

भदोही कस्बे से मिर्जापुर की सड़क पर निकलते ही इस कारोबार की पैठ का अंदाजा लगाया जा सकता है। जीप, ट्रक, ठेले अथवा अन्य वाहन ही नहीं मोटरसाइकिल और साइकिल पर भी लोग कालीन लेकर आते-जाते दिख जाएंगे। कुछ लोग साइकिल पर कालीन तैयार करने के लिए उसके धागे लिए दिखाई पड़ेंगे तो कुछ तैयार कालीन को संबंधित कंपनियों तक पहुंचाते दिखेंगे। महिलाएं भी सिर पर ऊन का गट्ठर लिए दिखेंगी अथवा किसी झोपड़ी से ठक-ठक की आवाज़ सुनाई पड़ेगी, जो कालीन बुनाई के दौरान निकलने वाली आवाज़ होगी। इतना ही नहीं भदोही-मिर्जापुर मार्ग पर स्थित विभिन्न बाजारों के आसपास सड़क के किनारे कालीन बिछे दिखेंगे। यह कालीन किसी के स्वागत में नहीं बल्कि सफ़ाई के बाद सूखने के लिए बिछाए गए होते हैं। इसी तरह धागा धुलाई से लेकर कालीन धुलाई तक की मशीनें भी दिखती हैं। कई स्थानों पर कालीन धुलाई के बाद सुखाने के लिए इस कदर फैलाए हुए दिखेंगे, जैसे धोबी घाट पर कपड़ा धुलने के बाद फैला हुआ हो। वास्तव में इस इलाक़े की आबोहवा में यह उद्योग शामिल हो चुका है। इस क्षेत्र में हैंड टफटेड, हैंड नॉटेड, फ्लैट वीव कारपेट, सूती दरियां, ऊनी दरियां, चैन स्टिच गरुस आदि का काम होता है। इन सब में हैंड नाटेड का काम सबसे अधिक होता है। यह एक तरह से परंपरागत कालीन कारोबार है। यहां बुनकर कोई जाति नहीं है, बल्कि मज़दूरों का एक समूह जैसा है। भदोही और मिर्जापुर जिला मुख्यालय के आसपास के गांवों में हर घर में काठ (कालीन बुनने के लिए लगने वाला लकड़ी का उपकरण) लगा दिख जाएगा। पुरुष ही नहीं महिलाएं भी घर का काम निबटाने के बाद कालीन बुनाई में जुट जाती हैं। जो लोग 10 से 20 हज़ार रुपये निवेश करने की स्थिति में होते हैं, वे आधा दर्जन काठ लगाकर विभिन्न पालियों में मज़दूरों से काम लेते हैं। इन्हें शाखा कहा जाता है। जो लोग अधिक पूंजी लगाने की स्थिति में होते हैं वे कुछ अधिक शाखाएं लगाते हैं। कुछ लोग तो ऐसे हैं जिनकी हर गांव में शाखा है। शाखा में संबंधित गांव के मज़दूर कालीन बुनाई का काम करते हैं और काम पूरा होने पर अपनी मज़दूरी ले लेते हैं। इस काम में मज़दूरों के लिए सबसे अच्छी बात यह है कि उन्हें किसी तरह की लागत नहीं लगानी पड़ती। वे जिस शाखा के लिए काम करते हैं वही उन्हें धागा मुहैया कराता है। डिज़ाइन कैसे तैयार करना है यह भी शाखा संचालक तय करता है। बस उन्हें संबंधित डिज़ाइन के आधार पर कालीन तैयार करना होता है। डिज़ाइन के लिए अलग-अलग

रंग के धागों का प्रयोग करना होता है। कालीन का मूल्य उसके डिज़ाइन पर निर्भर करता है। यही वजह है कि यह उद्योग इस इलाक़े के पढ़े-लिखे एवं अनपढ़ नौजवानों को रोज़गार उपलब्ध करा रहा है। यहां मज़दूरों की हमेशा आवश्यकता रहती है। यही वजह है कि मिर्जापुर-भदोही के विभिन्न बाज़ारों एवं गांवों में जहां भी बड़े स्तर पर कालीन के कारखाने लगे हुए हैं वहां पड़ोसी राज्यों के मज़दूर काम कर रहे हैं। बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश के अलावा नेपाल के हज़ारों मज़दूर इस कारोबार से जुड़े हुए हैं।

शिक्षित बेरोज़गारों को भी मिला काम

इस इलाक़े के शिक्षित बेरोज़गार नौकरी के लिए इधर-उधर नहीं भटकते हैं। जो खुद का कारोबार नहीं शुरू कर पाते अथवा बुनाई के काम में नहीं लगना चाहते, उनके लिए भी अवसर है। क्योंकि भदोही से लेकर मिर्जापुर तक दर्जनभर से अधिक ऐसी कंपनियां हैं, जिनका कारोबार ग्राम पंचायत स्तर तक फैला हुआ है। ऐसे में ये पढ़े-लिखे युवक इन कंपनियों के विपणन से लेकर प्रसार तक की जिम्मेदारी संभाले हुए हैं। विभिन्न कारपोरेट कंपनियों की तरह ही कालीन बनाने वाली कंपनियों में प्रबंधक से लेकर एग्जीक्यूटीव तक की भर्ती होती है। इसके लिए बाकायदा विज्ञापन निकाला जाता है। इस कारोबार से जुड़े युवक अपनी प्रतिभा के अनुसार कंपनियों में अवसर प्राप्त करते हैं। लोग गांव से लेकर कंपनी के गोदाम तक तैयार माल पहुंचाने तथा पंचायत स्तर की शाखा तक कच्चा माल निर्धारित समय पर पहुंचाना सुनिश्चित करते हैं। इस तरह कालीन उद्योग हर स्तर पर इस इलाक़े के लोगों के साथ जुड़ा हुआ है।

कालीन उद्योग का इतिहास

इस इलाके में कालीन उद्योग का इतिहास बहुत पुराना है। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि संत रविदास नगर जिले के भदोही कस्बे के नजदीक औराई के पास कुछ बुनकरों को लूट लिया गया था। इन बुनकरों ने जीविका चलाने के लिए कालीन बनाने का काम शुरू किया। इन्हें कालीन की अच्छी क़ीमत मिली। इसके बाद आसपास के लोग भी इनके पास सीखने के लिए आने लगे। इस तरह यह उद्योग भदोही-मिर्जापुर के गांव-गांव तक पहुंच गया। यहां के बने कालीन इंग्लैंड, अमरीका सहित अन्य देशों में भी खूब पसंद किए जाने लगे। यही वजह है कि भदोही को उत्तर प्रदेश की आर्थिक राजधानी के रूप में जाना जाने लगा। मिर्जापुर निवासी विजय सिंह पटेल बताते हैं कि हाल ही में आई मंदी का दौर खत्म होने के बाद कालीन व्यवसाय को एक बार फिर से काफी संभावनाएं दिख रही हैं। गत नवंबर में वाराणसी में लगे कालीन मेले में दुनियाभर के 45 देशों के कालीन व्यवसायियों ने हिस्सा लिया था। इन सभी व्यवसायियों ने भदोही एवं मिर्जापुर के कालीन की तारीफ की और तमाम लोगों से सीधे बातचीत की। विजय बताते हैं कि उनके पिताजी सिर्फ़ कारखाना चलाते थे। चूंकि इस इलाक़े के मज़दूर इस काम को बचपन से देखते आ रहे हैं, इसलिए उन्हें सिखाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। इलाक़े के लोगों के लिए कालीन का काम परंपरागत कार्यों जैसा हो गया है, इसलिए श्रमिकों की समस्या नहीं है। साथ ही इस कारोबार को शुरू करने के लिए ज्यादा पैसों की ज़रूरत भी नहीं पड़ती। इसलिए हम चील्ह, मनेथू, पवई सहित 10 गांवों में अपना कारखाना चला रहे हैं। हर कारखाने में क़रीब 25 से 30 लोग काम कर रहे हैं। इलाक़े में स्थित बड़ी फर्म धागा आदि मुहैया कराती हैं। जब हम उन्हें तैयार कालीन पहुंचाते हैं तो हाथों-हाथ भुगतान हो जाता है। विजय की मानें तो इस काम में ज्यादा मज़दूरों के लगने के पीछे सबसे बड़ा कारण है मज़दूरी में किसी तरह का घालमेल का न होना। जितनी बड़ी कालीन होगी, उसी हिसाब से मज़दूरी तय होती है।

महिलाएं हुईं स्वावलंबी

भदोही-मिर्जापुर के गांवों में कालीन व्यवसाय से जुड़े मज़दूरों में बड़ी संख्या महिलाओं की है। कुछ महिलाएं तो घर में ही कालीन बुनने का काम करती हैं और कुछ आसपास स्थित कारखानों में जाती हैं। वे घर का काम निबटाने के बाद कारखाने में काम करती हैं और अपनी जीविका के लिए किसी पर आश्रित नहीं रहतीं। कालीन बुनाई का काम करने वाली रजिया बानो, अनीता, शांति आदि बताती हैं कि वे बचपन से यह काम देखती आ रही हैं। इस काम को सीखने में उन्हें किसी तरह की परेशानी नहीं हुई। वे घर का काम निबटाने के बाद कारखाने में आ जाती हैं और क़रीब छह घंटे काम करके इतना पैसा कमा लेती हैं कि दो वक़्त की रोटी का इंतजाम हो सके। वे कहती हैं कि जब से उन्होंने कारखाने में आना शुरू किया, उन्हें कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाना पड़ा। अब सरकार की ओर से

उन्हें विभिन्न योजनाओं का लाभ भी मिल रहा है। वे अस्पताल से मुफ़्त में अपना इलाज करा सकती हैं। इन लोगों की तरह ही राजकुमार, महेश, पिंटू आदि भी कहते हैं कि इलाक़े में कालीन का काम होने के कारण उन्हें नौकरी के लिए कहीं भटकना नहीं पड़ा। उन्होंने स्नातक तक की पढ़ाई की है। नौकरी नहीं मिली तो किसी तरह का दुख भी नहीं हुआ। बस अपना काम शुरू कर दिया। राजकुमार बताते हैं कि पहले वह खुद कालीन बुनाई का काम करता था। औराई स्थित कंपनी से धागे ले आता और उस कंपनी के मुताबिक़ डिज़ाइन तैयार करके उन्हें पहुंचा देता। धागे का पैसा काटने के बाद जो कालीन की क़ीमत होती वह हमारी। इसके बाद दो अन्य साथियों ने भी काम शुरू कर दिया। अब हम तीन लोगों ने मिलकर 10 सेट तैयार किए हैं। इन पर रात-दिन भिन्न-भिन्न पालियों में काम चल रहा है। क़रीब 15 मज़दूर काम में लगे हैं। हम लोग कच्चा माल औराई से लाते हैं और तैयार माल वहां पहुंचा देते हैं। इस तरह से यह काम पूरी तरह से नगदी जैसा ही है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में भागीदारी

भदोही के कालीन उद्योग को आज़ादी के बाद विस्तृत पहचान मिली। वर्ष 1962 में भदोही-मिर्जापुर के कालीन उद्योग को इंग्लैंड, अमरीका, जर्मनी आदि देशों में बादशाहत हासिल हुई। भारत ने वर्ष 1962 में जहां 4.42 करोड़ का निर्यात किया वहीं वर्ष 1993 में यह आंकड़ा 1,047 करोड़ तक पहुंच गया। इसमें भदोही-मिर्जापुर की भागीदारी 75 से 80 फीसदी रही। इसके बाद से कालीन उद्योग कर ग्राफ लगातार आगे बढ़ता जा रहा है। वर्ष 2007-08 को इस उद्योग का स्वर्णिम काल माना जाता है। इस वर्ष कुल 3,674.89 करोड़ का निर्यात हुआ।

कुछ समय पहले अमरीका सहित यूरोपीय बाज़ार में आई मंदी ने इस कारोबार पर भी असर डाला और निर्यात में गिरावट आई। चूंकि भारतीय कालीनों के कुल निर्यात का क़रीब 50 फीसदी केवल अमरीकी देशों में होता है, ऐसे में असर पड़ना लाज़िमी था। लेकिन अब यह कारोबार एक बार फिर कुलाचें मारने लगा है। अफ़्रीका, लैटिन अमरीका, जापान, चीन व तुर्की जैसे देश भदोही के कालीन की मांग कर रहे हैं।

तालिका-1

वर्ष 2000-2010 के दौरान कालीन निर्यात से हुई आमदनी

वर्ष	निर्यात करोड़ ₹ में	निर्यात डॉलर में
2000-2001	2,315.15	512.03
2001-2002	2,436.13	514.07
2002-2003	2,590.26	532.96
2003-2004	2,779.79	614.44
2004-2005	2,583.62	591.40
2005-2006	3,082.06	696.53
2006-2007	3,674.86	807.96
2007-2008	3,524.73	875.71
2008-2009	2,708.73	600.06
2009-2010	2,505.33	525.87

प्रमुख योजनाएं

मिर्जापुर-भदोही क्षेत्र में कालीन बुनकरों के संरक्षण के लिए कई योजनाएं चलाई जा रही है। इससे इस कार्य से जुड़े लोगों को काफी आत्मबल मिलता है। चूंकि यह कारोबार पूरी तरह से परंपरागत हो गया था, इसलिए कुछ स्थानों पर बालश्रम की शिकायतें भी मिलीं। स्थिति यह हो गई कि अमरीका ने कालीन कारोबार को बाल श्रमिक आधारित व्यवसायों की सूची में सूचीबद्ध कर दिया।

निर्यात में लगे व्यवसायियों ने सरकार के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सहयोग किया। तय किया गया कि जो लोग कारखाना चलाते हैं बाकायदा उनका पंजीकरण करा लें। कारखाने में कितने कारीगर हैं इसकी सूचना समय-समय पर सरकार को देते रहें। इससे श्रमिकों में आत्मविश्वास बढ़ेगा और उनके लिए कल्याणकारी योजनाएं तैयार की जा सकेंगी। छोटी-छोटी शाखाएं लगाने वालों को यह बात समझ में आई और सभी ने सहयोग किया। नतीज़ा यह हुआ कि श्रमिकों के कल्याण के लिए इस इलाक़े में विभिन्न योजनाओं का संचालन शुरू हो गया जिसका नतीजा यह रहा कि 20 जुलाई, 2010 को अमरीकी सरकार ने इस कारोबार को अपने यहां के बालश्रम आधारित कारोबार की सूची से मुक्त कर दिया।

मुफ़्त चिकित्सा सुविधा

सरकार की ओर से इस काम में लगे श्रमिकों के लिए मुफ़्त चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराई जा रही है। श्रमिक अपने साथ अपने परिवार के सदस्यों का भी मुफ़्त इलाज़ करा सकते हैं। इसके लिए श्रमिकों को कार्ड जारी हुआ है। जो श्रमिक घर पर काम करते हैं उनके लिए भी संबंधित ग्राम पंचायत की ओर से प्रमाण-पत्र जारी किया गया है।

बाल श्रमिक विद्यालय

कालीन श्रमिकों के बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के लिए अलग से बाल श्रमिक विद्यालय खोले गए हैं। इसके अलावा हर गांव में पहले से ही प्राथमिक विद्यालय मौजूद हैं। भदोही-मिर्जापुर में इन दिनों 35 बाल श्रमिक विद्यालय चल रहे हैं। इन विद्यालयों में मिड-डे मील, पोशाक एवं पुस्तकें निःशुल्क दी जाती हैं। इसके अलावा इनके लिए छात्रवृत्ति का भी प्रावधान है। कुछ स्वयंसेवी संस्थाएं भी इनकी ज़रूरतों की निगरानी करती रहती हैं। ये संस्थाएं समय-समय पर मज़दूरों के हितों को लेकर जिलाधिकारी, श्रमायुक्त के जरिये सरकार का ध्यान आकृष्ट कराती रहती हैं। श्रमिकों को पारंगत बनाने के लिए इन संस्थाओं की ओर से विभिन्न तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते हैं। कालीन उद्योग से जुड़ी कई बड़ी कंपनियां भी इस मामले में क़दम से क़दम मिलाकर चल रही हैं। ये कंपनियां सामाजिक कल्याण के तहत श्रमिकों के बीच कई तरह के कार्यक्रम लेकर आती हैं। समय-समय पर मज़दूरों के प्रशिक्षण, स्वास्थ्य परीक्षण एवं शैक्षिक विकास के लिए शिविरों का भी आयोजन करती हैं। इन कंपनियों को इस बात का अहसास है कि यदि उनका नाम दुनिया में चल रहा है तो इसका पूरा श्रेय श्रमिकों को जाता है। इनकी कार्यकुशलता और निपुणता के कारण ही विश्व मानचित्र पर भदोही चमक रहा है। केंद्र एवं राज्य सरकार की अन्य योजनाओं का भी लाभ श्रमिकों को मिल रहा है। इसकी वजह से यह कारोबार दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है।

इस तरह देखा जाए तो भदोही का कालीन उद्योग जहां पूरी दुनिया में नाम कमा रहा है वहीं इस इलाक़े के पढ़े-लिखे नौजवानों एवं अ नपढ़ ग़रीबों को स्वावलंबी बना रहा है। सबसे ज्यादा फायदा महिलाओं को मिल रहा है। क्योंकि वे घर-गृहस्थी संभालने के साथ-साथ इस उद्योग से जुड़ कर स्वावलंबी बनी हैं। अब उन्हें किसी के सामने हाथ फैलाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।
ई-मेल : yakhileshchandra@gmail.com)

बिहार की अर्थव्यवस्था में कुटीर एवं लघु उद्योगों का योगदान

● तपन कुमार शांडिल्य

बिहार में लघु एवं कुटीर उद्योगों का विशेष महत्व है। लघु एवं कुटीर उद्योगों में साधन की कम ज़रूरत होती है। इनके माध्यम से बड़ी मात्रा में रोज़गार के अवसरों का सृजन होता है। ये उद्योग राज्य के बहुत से लोगों की जीविका के साधन हैं। इनके विकास से बुनकरों की ग़रीबी को दूर किया जा सकता है। बिहार की आबादी का क़रीब 86.4 प्रतिशत गांवों में निवास करता है। क़रीब 73 प्रतिशत लोग कृषि पर आधारित हैं। राज्य में क़रीब 42.6 प्रतिशत लोग ग़रीबी रेखा के नीचे जीवन बसर करते हैं। बिहार में विभिन्न प्रकार के कुटीर उद्योग हैं यथा– हस्तकरघा वस्त्र उद्योग, बीड़ी, साबुन, चमड़ा, टोकरी, चटाई, फर्नीचर, रेशम उद्योग एवं मधुबनी पेंटिंग इत्यादि। लघु उद्योग प्रक्षेत्र में अति लघु उद्योगों की बहुतायत है। ये उच्च उत्पादकता वाले तो नहीं हैं, लेकिन कृषि के बाद रोज़गार के अवसर प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दिसंबर 2008 में बिहार में 1,74,278 स्थायी निबंधित इकाइयां थीं। इनमें 1,502 लघु इकाइयां, 1,02,676 अतिलघु इकाइयां तथा 70,100 कारीगर आधारित इकाइयां थीं। उनमें कुल निवेश ₹ 1,017.62 करोड़ था और उन इकाइयों ने 5.68 लाख श्रमिकों को रोज़गार दे रखा था।

प्रमुख उद्योग

बिहार में कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास की अच्छी संभावनाएं मौजूद हैं। लेकिन देखा जा रहा है कि कृषि आधारित उद्योगों की पूरी संभावनाओं का उपयोग नहीं हो पा रहा है। इनका विकास मोटे तौर पर अन्य फ़सलों के मुक़ाबले फूलों एवं सब्ज़ियों को दिए गए महत्व पर निर्भर करता है। वर्ष 2006-07 में 2.79 लाख हेक्टेयर कुल उत्पादन के अंतर्गत और 8.24 लाख हेक्टेयर सब्जी उत्पादन के अंतर्गत था। जिनका उत्पादन क्रमशः 34.26 लाख टन और 136.08 लाख टन था। हाल के वर्षों में सब्जियों और फूलों का उत्पादन संतोषजनक नहीं रहा है। कृषि आधारित उद्योगों में कृषि के लिए क्षेत्रफल और उत्पादन, दोनों में वर्तमान स्तर के मुक़ाबले वृद्धि करना महत्वपूर्ण होगा ताकि बड़ी संख्या में किसानों की आय और रोज़गार बढ़े। शहद के मामले में राज्य का औसत उत्पादन 60 किग्रा प्रति बक्सा है जो राष्ट्रीय औसत (20 किग्रा प्रति बक्सा) से तीन गुना अधिक है। शहद उत्पादन के क्षेत्र में एक लाख से अधिक परिवार प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हैं।

रोज़गार सृजन के लिए फूलों और सब्जियों के साथ दूध और अंडे भी काफी महत्वपूर्ण हैं। बिहार के बहुत से जिलों में केंद्र सरकार द्वारा प्रायोजित राष्ट्रीय बागवानी मिशन के जरिये बागवानी के विस्तार का भी प्रयास किया जा रहा है।

रेशम उद्योग

रेशम एवं सिल्क उद्योग बिहार का एक प्रमुख उद्योग है। यह कृषि आधारित उद्योग है। भारत में रेशम उत्पादन में बिहार का दूसरा स्थान है। भागलपुर एवं पूर्णिया इसके प्रमुख केंद्र हैं। इस उद्योग में कमज़ोर वर्ग के लोगों, खासकर महिलाओं को रोज़गार प्राप्त है। यह उद्योग ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार उपलब्ध कराता है जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में प्रवास कम हो जाता है।

ग्यारहवीं योजना के अंतर्गत एक योजना भौतिक अधिसंरचना विकास की है जिसके अंतर्गत तसर हेतु 5 पायलट परियोजना केंद्र तथा एक विपणन केंद्र का विकास किया जाएगा। उत्पादन बढ़ाने के लिए इस उद्योग में लगे लोगों को यह केंद्र तसर के कोये (ककून) उपलब्ध कराएगा और उसके विपणन में भी सहायता करेगा। केंद्रीय रेशम बोर्ड के जरिये तकनीकी कर्मचारियों के प्रशिक्षण के साथ-साथ सांत्वना पुरस्कारों के अलावा तीन सर्वोत्तम ककून उत्पादकों तथा रेशम उत्पादकों को पुरस्कृत करने की भी योजना है। 11वीं योजना में 162.5 टन कच्चे रेशम के उत्पादन का लक्ष्य तय किया गया है।

खाद्य प्रसंस्करण

बिहार राज्य में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की काफी संभावना है। अगर सही ढंग से विकास किया जाए तो इससे न्यूनतम 5 लाख लोगों को अतिरिक्त रोज़गार मिल सकता है। अनाजों के प्रसंस्करण के अलावा फूलों एवं सब्जियों के प्रसंस्करण की भारी संभावनाओं का दोहन किया जाना शेष है। आम, लीची, केला आदि के प्रसंस्करण से ग्रामीण आबादी की आय और रोज़गार (कृषि) के अलावा मौसमी उपभोग, भंडारण और उनका पोषण मूल्य बनाए रखने पर ध्यान दिया जा सकेगा। राज्य के उत्तरी एवं उत्तर-पूर्वी भाग के 10 जिलों के 16.90 हज़ार हेक्टेयर क्षेत्रफल में मखाने का उत्पादन होता है। पटना में एक मखाना प्रसंस्करण इकाई सफलतापूर्वक काम कर रही है। राज्य में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के विकास की संभावनाओं को देखते हुए उद्योग विभाग ने राज्य में खाद्य प्रसंस्करण अधिसंरचना तथा अन्य सुविधाओं के

विकास हेतु ₹ 1,760 करोड़ की एक परियोजना के लिए योजना बनाई है। इस परियोजना के तहत 100 ग्रामीण प्रसंस्करण केंद्रों पर ₹ 500 करोड़ ख़र्च किए जाएंगे।

मत्स्य उद्योग के लिए ₹ 200 करोड़ का प्रावधान किया गया है। खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों की सहायता के लिए केंद्र सरकार द्वारा हाजीपुर में फूड पार्क की स्थापना की जा रही है जिसके लिए ज़मीन के रूप में राज्य ने भी योगदान किया है। ग्यारहवीं योजना की अवधि के लिए इस मकसद का योजना परिव्यय ₹ 400 करोड़ है।

कृषि आधारित उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए बतौर चाय बागान के आदर्श क्षेत्र के लिहाज से किशनगंज की पहचान की गई है। इससे बिहार राज्य के लगभग 20 हज़ार मज़दूरों को रोज़गार मिलेगा। चाय बोर्ड की योजना के अंतर्गत किशनगंज जिले को अपारंपरिक चाय क्षेत्र माना जाता है। हालांकि चाय प्रक्षेत्र का विकास बहुत अधिक नहीं है क्योंकि राज्य में मात्र 2 चाय प्रसंस्करण इकाइयां हैं।

दुग्ध उत्पादन उद्योग

बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है। कृषि में सहायता की दृष्टि से पशुधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। बड़ी संख्या में गाय, भैंस और बकरी जैसे दुधारु पशु मौजूद होने के कारण दूध और दूध से बने उत्पाद भरपूर मात्रा में खरीदे-बेचे जाते रहे हैं। परिणामस्वरूप बिहार में डेयरी उद्योग में लघु-मध्यम और वृहद स्तर की अनेक इकाइयां उत्पादन कार्य से जुड़ी हैं। अत: दुग्ध उत्पादन बिहार में किसानों एवं ग्रामीणों का सहायक रोज़गार है। राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में दुग्ध उत्पादन प्रक्षेत्र को मुख्य भूमिका निभानी है। यह गांवों में रोज़गार का सृजन करेगा। अतएव दूध उत्पादन पर ध्यान केंद्रित करने के अलावा वर्ष 2007-08 के डेयरी विकास कार्यक्रम दुग्ध उत्पादकों एवं बेरोज़गार युवा वर्ग, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों के अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्गों के लोगों को दुधारु पशु तथा अधिसंरचनात्मक सहायता देने की ओर भी उन्मुख है।

बिहारशरीफ में 30 मी. टन दुग्ध निर्माण की क्षमता वाले एक संयंत्र की स्थापना की जा रही है। संयंत्र पर काम वर्ष 2006 से चल रहा है और वह इसी वर्ष पूरा हो जाएगा। इस संयंत्र की स्थापना से क्षेत्र में दूध का एक बड़ा बाज़ार तैयार हो जाएगा। इस योजना के कार्यान्वित हो जाने पर 1,500 गांवों को प्रत्यक्ष रोज़गार तथा लगभग 75,000 लोगों को अप्रत्यक्ष रोज़गार प्राप्त होगा। इसके अलावा वर्ष 2007-08 में राज्य के 10 जिलों (अरवल, बांका, जमुई, सीवान, छपरा, सुपौल, मधेपुरा, लखीसराय, नवादा और शेखपुरा) में 250 लघु दुग्ध उत्पादन इकाइयां स्थापित करने की एक योजना को मंजूरी दी गई है। इनमें से प्रत्येक जिले में एक लाख रुपये प्रतिइकाई की अनुमानित लागत से 25 इकाइयां स्थापित किए जाने की योजना है। प्रत्येक इकाई की स्थापना के लिए बेरोज़गार युवक/युवती, किसान दुग्ध उत्पादकों को 20,950 रुपये अनुदान देने का प्रावधान है जिसका उपयोग दुधारू पशुओं का बीमा तथा उनके चारा एवं अन्य स्वास्थ्य संबंधी व्ययों के लिए होगा। शेष राशि बैंकों द्वारा उपलब्ध कराई जाएगी। इस प्रकार इन 250 इकाइयों की स्थापना हेतु कुल 52,375 लाख रुपये किसानों को उपलब्ध कराए जाएंगे।

वर्तमान वित्त वर्ष में राज्य के चार जिलों (लखीसराय, छपरा, नवादा तथा अरवल) में एक-एक आदर्श दुग्ध उत्पादक ग्राम इकाइयां स्थापित करने की एक योजना मंजूर की गई है। प्रत्येक इकाई में पांच गांवों का एक समूह होगा जिसमें से एक गांव को मॉडल समिति के रूप में विकसित किया जाएगा और उसे बुनियादी अधोसंरचना उपलब्ध कराई जाएगी। मॉडल समिति को समिति भवन, दुग्ध शीतलक, दुग्ध जांच उपकरण, कृत्रिम गर्भाधान केंद्र तथा प्राथमिक उपचार सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएंगी। इस योजना से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रोज़गार मिलने की संभावना है।

दुग्ध उत्पादक सहकारी समिति

बिहार में मशहूर दुग्ध उत्पादक सहकारी समिति 'काम्फेड' राज्य में पांच दुग्ध उत्पादक संघों के जरिये प्रतिदिन 6 लाख लीटर दूध संग्रहित कर रही है। राज्य की 5,500 दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों में से लगभग 85 प्रतिशत कार्यशील हैं। ये दुग्ध उत्पादक सहयोग समितियां कुल 2.67 लाख सदस्यों को लाभान्वित कर रही हैं जिनमें से 82 प्रतिशत लोग इन समितियों को दूध की आपूर्ति करते हैं। इस कार्यक्रम ने ग्रामीण आबादी के आर्थिक उन्नयन में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

चर्म उत्पादन

बिहार में चर्म उत्पाद संबंधी उद्योगों की काफी संभावनाएं हैं। इसे लघु उद्योग की श्रेणी में रखा जाता है। यहां बड़ी मात्रा में मवेशी पालन होता है जिसमें गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी इत्यादि प्रमुख हैं। राज्य में अनुमानत: 212 लाख रुपये से अधिक का कच्चा चमड़ा पैदा होता है। चर्म उत्पादों की संख्या एवं गुणवत्ता को देखते हुए राज्य में चर्म उत्पादों से संबंधित उद्योगों की अच्छी संभावना दिखती है।

अन्य कुटीर उद्योग

इन उद्योगों के अतिरिक्त बिहार में दूसरे कार्य भी गृह स्तर पर किए जाते हैं, जैसे– चटाई एवं टोकरी का निर्माण, रस्सी एवं डोर का निर्माण, बेंत एवं बांस के सामान, मधुमक्खी पालन, कुक्कुट पालन, लकड़ी के फर्नीचर, मिट्टी के बर्तन, लोहे के सामान, जैसे– कैंची, छुरी, कुदाल, खुरपी इत्यादि।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि बिहार में कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास की अच्छी संभावनाएं हैं एवं इन उद्योगों के विकास के लिए निम्नांकित ठोस प्रयास करने की आवश्यकता है :

वित्तीय सुविधा देना, कच्चे माल की व्यवस्था, विपणन की व्यवस्था, गुणवत्ता में सुधार एवं कुशलता में वृद्धि, शक्ति की आपूर्ति, तकनीकी स्तर पर सुधार, कारीगरों के लिए शिक्षण एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था आदि।

सामाजिक, आर्थिक अधोसंरचना के साथ-साथ शांति व्यवस्था, संपत्ति एवं जनजीवन को सुरक्षा प्रदान करने में राज्य की भूमिका अहम होनी चाहिए। तभी निजी क्षेत्र द्वारा निवेश की गुंजाइश होगी। साथ ही, बिहार में व्यावसायिक बैंकों तथा अन्य विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं को पूंजी उपलब्ध कराने में सकारात्मक भूमिका अदा करने की ज़रूरत है न कि उनके अति सुरक्षा प्रेरित दृष्टिकोण की। इसमें बदलाव लाए बिना विकास को गति प्रदान करना संभव नहीं है। इन उपायों के द्वारा बिहार में कृषि आधारित उद्योगों, खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों, लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास एवं विस्तार का अवसर मिलेगा। इनके तीव्र विकास के द्वारा ही बिहार की कृषि अर्थव्यवस्था में बदलाव आएगा, रोज़गार के अवसर उपलब्ध होंगे तथा ग़रीबी दूर करने में सहायता मिलेगी। यदि बिहार को खुशहाल बनाना है तो एकजुट होकर सकारात्मक दृष्टिकोण से काम करना होगा। राज्य, प्रशासनिक तंत्र, जनता एवं वित्तीय संस्थाओं को भी मिलकर काम करना होगा। ❑

(लेखक आरसीएस कॉलेज, मंझौल, बेगूसराय के प्राचार्य हैं)

स्वचालित जग

पश्चिम बंगाल के सुकोमल बसाक ने तरल पदार्थ को स्वत: ही जग में उड़ेल देने वाले एक जग की रोचक कल्पना की है। तूफानगंज में जन्मे और बड़े हुए सुकोमल एक किराने की दुकान के मालिक हैं। तूफानगंज, एक छोटी परंतु घनी आबादी वाली नगरपालिका है। अधिकतर मध्यवर्गीय परिवार वाले इस कस्बे के लोग विभिन्न प्रकार का काम कर रहे हैं। सुकोमल ने दसवीं के बाद अपनी पढ़ाई छोड़ दी और वे अपने पिता की किराने की दुकान में उनका हाथ बंटाने लगे।

सुकोमल को बचपन से ही एडिसन और ग्राहम बेल जैसे महान आविष्कारकों की आत्मकथाओं में गहरी रुचि थी। उन्हें विज्ञान के विषय बहुत अच्छे लगते थे। जब-तब उनके मन में अनेक विचार जन्म लेते रहते, परंतु उन्होंने कभी उन विचारों को मूर्तरूप में बदलने के बारे में नहीं सोचा। पैसे की कमी के कारण भी वे कुछ नया करने की अपनी इच्छा पर अमल नहीं कर सके। उनकी एक दिलचस्पी, जो आज तक अनवरत बनी हुई है, वह है– अख़बारों में रुचि। अख़बार पढ़ना उन्हें बहुत अच्छा लगता था। दरअसल, पश्चिम बंगाल के अत्यंत लोकप्रिय अख़बार *आनंद बाज़ार पत्रिका* के माध्यम से ही उन्हें एनआईएफ (राष्ट्रीय नवाचार मंच) के बारे में पता चला। वर्ष 2005 में एनआईएफ के तीसरे पुरस्कार समारोह के बाद बांकुड़ा के महावीर चौबे की ख़बर अख़बारों में छपी थी, जिन्होंने एक नये प्रकार के पेंच (स्क्रू) का आविष्कार किया था। इससे सुकोमल को भी प्रेरणा मिली और उन्होंने भी कुछ कर दिखाने की ठान ली। बेहतर विचारों के लिए उन्होंने डिस्कवरी और नेशनल ज्योग्राफिक जैसे टीवी चैनल भी देखना शुरू कर दिया।

फरवरी 2006 में जब *आनंद बाज़ार पत्रिका* में साधारणजनों के नवीन आविष्कारों और पारंपरिक ज्ञान पद्धतियों की एनआईएफ की पांचवीं राष्ट्रीय प्रतियोगिता का समाचार प्रकाशित हुआ, तो सुकोमल ने भी उसमें भाग लेने की अपनी पात्रता का पता किया और विभिन्न विचारों और कल्पनाओं को साकार करने के बारे में सोचने लगे। अंतत: कुछ महीनों बाद उन्होंने स्वचालित जग की अपनी योजना भेज दी।

विचार

सुकोमल जब पांचवीं कक्षा में पढ़ते थे तभी से अपने घर के लिए वे मिट्टी का तेल ख़रीदने के लिए राशन की दुकान पर जाया करते थे। वह बड़े गौर से देखा करते थे कि किस तरह दुकान का एक कर्मचारी बड़े कंटेनर से छोटे डिब्बे में मिट्टी का तेल निकालने के लिए प्लास्टिक के पाइप के एक सिरे को चूसा करता था। एक दिन उन्होंने अपने घर पर पानी का

इस्तेमाल करते हुए यही तरीक़ा आजमाने की सोची। वह सफल रहे। वे इस विधि को अन्य किसी कार्य में उपयोग में लाने के बारे में सोचने लगे। जब वे आठवीं कक्षा में थे, उन्होंने एक कहानी पढ़ी, 'मानव मात्र हेतु प्रौद्योगिकी', जिसमें रेस्तराओं और पानी परोसने का उल्लेख किया गया था। उनको लगा कि इस प्रकार के उपयोग के लिए अपने इस विचार को आगे बढ़ाया जा सकता है। यह विचार उनके दिमाग में लंबे समय से दबा पड़ा था और अब कई वर्षों बाद उसे याद कर एनआईएफ की प्रतियोगिता में भाग लेने को भेजा।

सुकोमल के मन में एक ऐसे उपकरण का विचार आया जिसमें एक कंटेनर और एक डिस्पेंसर होता है और जो डिस्पेंसर की सतह से नीचे रखे गिलास को तरल पदार्थ से भर देता है। चार डिस्पेंसरों के साथ (चारों ओर) मुख्य कंटेनर को स्टेनलेस स्टील के एक आधार पर रखा जाता है। प्रत्येक डिस्पेंसर के नीचे, तख़्ते पर, चार स्विच लगे होंगे। इन स्विचों को एक वाल्व से जोड़ दिया जाएगा, जो उस पर रखे गिलास के भार से दबकर खुल जाता है। परिणामस्वरूप तरल पदार्थ मुख्य कंटेनर से डिस्पेंसर के ज़रिये गिलास में पहुंच जाएगा। तरल पदार्थ तब तक निकलता रहेगा, जब तक गिलास आधार पर रखा रहेगा।

प्रारंभ में, सुकोमल ने एनआईएफ को केवल अपने विचार का चित्र बनाकर ही भेजा था, परंतु बाद में कागज़ का प्रारूप तैयार कर भेज दिया। अपने काम से समय निकालकर वे अपनी इस परियोजना पर काम करते रहे और इसका नमूना तैयार करने में उन्हें चार महीने लग गए। एनआईएफ ने नमूने के विवरण के अनुसार उसकी संभाव्यता का आकलन कर अपने अनुसंधान एवं विकास (आरएंडडी) कोष से उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान की ताकि वे एक कार्यशील नमूना (प्रोटोटाइप) तैयार कर सकें। सहायता देने के पूर्व इस बात की व्यापक खोजबीन की गई कि यह विचार वास्तव में नया है कि नहीं। यह पता चला कि यद्यपि विभिन्न क्रियाविधियों से संचालित अनेक आकार-प्रकार के जग मौजूद हैं परंतु एक भी जग ऐसा नहीं है जो मशीनी स्विचों से एक साथ कई डिस्पेंसरों को सक्रिय कर सकता हो। एनआईएफ ने सुकोमल के नाम से इस उपकरण के पेटेंट के लिए आवेदन भी कर दिया है।

सुकोमल ने फैब्रीकेशन (ढांचों के निर्माण) के बारे में कोई औपचारिक प्रशिक्षण नहीं लिया था। अपने उपकरण को तैयार करने के काम आने वाली विभिन्न सामग्रियों की विशेषताओं को समझने में उन्हें कुछ समय लगा। कुछ महीनों तक वे लगातार इस पर काम करते रहे और कुछ समय बाद वे जीआई और एल्युमिनियम के पाइप लगे टिन का स्वचालित जग का नमूना तैयार करने में सफल रहे।

चूंकि यह उनका पहला प्रयास था, काम में सफ़ाई नहीं थी। ठीक से जुड़ाई न होने के कारण चार में से दो डिस्पेंसर काम न कर सके। परंतु डिज़ाइन संबंधी कुछ जानकारी प्राप्त कर उपकरण का रूप-रंग, आकार और दक्षता को सुधारा जा सकता है। एनआईएफ ने सुकोमल की कल्पना पर आगे काम करने के लिए विशेषज्ञों की सहायता ली है। यह स्वचालित जग रेस्तराओं, घरों, सार्वजनिक प्याऊ, मिल्क बूथ और राशन की दुकानों पर इस्तेमाल किया जा सकता है। तरल रसायनों को निकालने के लिए रसायन उद्योग में भी इसका उपयोग किया जा सकता है।

स्वचालित जग का विकास करते समय सुकोमल ने हाथ से चलाए जाने वाले एक किफ़ायती मिक्सर की भी योजना बनाई थी, जिसका उपयोग विभिन्न वस्तुओं का मिश्रण तैयार करने अथवा ब्लेंडिंग के लिए किया जा सकता है। अपने कार्य से वे काफी संतुष्ट और प्रसन्न हैं तथा एनआईएफ के सहयोग से अपने स्वचालित जग को सफलतापूर्वक बाज़ार में लाने के प्रति पूर्णतः आश्वस्त हैं। ❑

सदस्यता कूपन

नयी सदस्यता / नवीकरण / पता बदलने के लिए (जो लागू होता हो उस पर '✓' का चिह्न लगाएं।)

मैं ..... (पत्रिका का नाम एवं भाषा) का ❑ वार्षिक (₹ 100) ❑ द्विवार्षिक (₹ 180)

❑ त्रिवार्षिक (₹ 250) सदस्य बनने का इच्छुक हूं। डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर संख्या ..... तारीख .....

नाम .....

वर्ग ❑ विद्यार्थी ❑ शिक्षक ❑ संस्था ❑ अन्य

पता :.....

.....

पिन .....

नवीकरण/पता बदलने के लिए कृपया अपनी सदस्य संख्या यहां लिखें :.....

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर ***अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग*** के नाम से बनवाएं और कूपन के साथ इस पते पर भेजें :

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार), प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड-IV, सातवां तल, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

वित्तीय समावेशन में वित्तीय साक्षरता की भूमिका

● गौरव कुमार

भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए वित्तीय समावेशन नितांत आवश्यक है। यहां की अधिकांश आबादी ग़रीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करती है। अर्जुन सेनगुप्त समिति के अनुसार, भारत की 84 करोड़ आबादी तो 20 रुपये की आमदनी पर निर्भर है। इन सबके साथ विकास दर के महान लक्ष्यों की पूर्ति संभव नहीं है। इसलिए वित्तीय समावेशन की भूमिका यहां महत्वपूर्ण है।

वित्तीय समावेशन

प्रचलित रूप से वित्तीय समावेशन की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि 'यह कम आय वाले वंचित लोगों के बीच बैंकिंग सेवाओं की उपलब्धता सुगमता से की जाने की अवधारणा से संबद्ध है।' इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो इन सुविधाओं से वंचित हैं उन तक बचत, ऋण, बीमा आदि सेवाओं की औपचारिक वित्तीय व्यवस्था उपलब्ध हो। वित्तीय समावेशन की अब तक कोई सार्वभौम सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। यह भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक एवं देश के काल के अनुरूप निर्धारित होती है। विश्व बैंक के अनुसार जो परिभाषा दी गई है उसके अनुसार 'मूल्य संबंधी अवरोधों के बिना वित्तीय सेवाओं तक पहुंच ही वित्तीय समावेशन है। इसे परिभाषित करना व मापना कठिन है, क्योंकि पहुंच की बहुत सारी विधाएं हैं।' भारत में वित्तीय समावेशन के लिए डॉ. सी. रंगराजन की अध्यक्षता में गठित समिति ने वर्ष 2008 में में कहा कि 'कम आय व कमज़ोर वर्गों के लिए ऋण व वित्तीय सेवाओं तक स-समय सुगमतापूर्वक पहुंच ही वित्तीय समावेशन है।'

इस प्रकार वित्तीय समावेशन को ग़रीबों, वंचित समूहों, कम आय के लोगों की वित्तीय सेवाओं व उत्पादों तक सुगम तरीक़े से पहुंच के रूप में देखा जाता है। इन सेवाओं के संकेतक हैं– जमा, निकासी, ऋण, बीमा, भुगतान सेवा, मनी ट्रांसफर आदि।

वित्तीय साक्षरता

वित्तीय साक्षरता से तात्पर्य है ऐसी योग्यता जिससे व्यक्ति अपने व्यक्तिगत वित्त प्रबंध से संबद्ध करके निर्णय ले सके। वर्तमान की जटिल वित्तीय सेवाओं व उत्पादों की अपार उपलब्धता ने लोगों के समक्ष चयन और विशेषज्ञता की मांग प्रस्तुत की है। यह वर्तमान की वास्तविकता है कि देश की अधिसंख्य आबादी अपनी मांग व ज़रूरतों की पूर्ति के लिए पारंपरिक वित्तीय सेवाओं (सूदखोरों आदि) पर निर्भर है। सरकार की नीतियों व व्यवस्थाओं के प्रति जागरुकता का अभाव व डर व्याप्त है। इस संदर्भ में वित्तीय साक्षरता के द्वारा उन तमाम लोगों को इन औपचरिक वित्तीय व्यवस्थाओं के साथ जोड़ा जा सकेगा।

तकनीकी रूप से हम किसी को वित्तीय साक्षर तब कहेंगे जब वह वित्त बाज़ार के उत्पादों, संकट व लाभ की समझ रखता हो तथा ज़रूरत की प्राथमिकताओं के साथ अपना समायोजन करे। आर्थिक सुधारों, नीतियों की जानकारी व आत्मविश्वास के साथ अपने सीमित संसाधनों का बुद्धिमत्तापूर्वक सुनियोजित प्रयोग करना वित्तीय साक्षरता का लक्षण है।

वित्तीय शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता न केवल विकासशील वरन विकसित देशों के लिए भी ज़रूरी है। विकसित देशों में विकास की गति के साथ-साथ वित्तीय उत्पादों की संख्या और जटिलता में वृद्धि हो रही है। इसके साथ ही सरकार और वित्तीय संस्थाओं के ऊपर सामाजिक सुरक्षा व लोगों के बैंकिंग सेवाओं और उनकी व्यक्तिगत वित्त प्रबंध की जिम्मेदारी भी आई है। इसकी पूर्ति निश्चित तौर पर वित्तीय शिक्षा प्रदान कर की जा सकती है। विकासशील देशों के साथ भी यही स्थिति है, जहां बड़ी संख्या में उपभोक्ता वर्ग का उदय और इसके साथ वित्तीय उत्पादों व सेवाओं की संख्या व जटिलता भी बढ़ी है। भूमंडलीकरण, व्यक्तिगत गतिशीलता के दौर में वर्तमान की प्रमुख मांग है अधिक-से-अधिक वित्तीय जागरुकता। वित्तीय साक्षरता के माध्यम में प्रतिव्यक्ति जीवन की गुणवत्ता वृद्धि के साथ-साथ एकीकृत और गुणवत्तापूर्ण बाज़ार की प्राप्ति भी संभव है। जिससे न केवल व्यक्तिगत वित्त सुधार होगा वरन् राष्ट्रीय आर्थिक विकास में भी सापेक्षिक महत्व रेखांकित होगा।

वित्तीय समावेशन व शिक्षा

अधिकांश भारतीय जनता के पास अपने वित्त प्रबंध की कोई जानकारी नहीं होती। बचत व ख़र्च के प्रति वे लापरवाह हैं, यहां तक कि उनके पास एक बैंक खाता तक नहीं है। यह भारत के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती

है। ग्रामीण भारत की अधिकांश जनता को अपने सामान्य अधिकारों तक की जानकारी नहीं है जो भारतीय संविधान ने उन्हें प्रदान किए हैं, तो वित्तीय अधिकारों के बारे में तो वे सोच भी नहीं सकते। जब उन्हें इन अधिकारों व वित्तीय सेवाओं-उत्पादों की जानकारी मिलेगी तब वे अधिक-से-अधिक इन वित्तीय सेवाओं से लाभान्वित होना प्रारंभ करेंगे। साथ ही वे सूदखोरों के चंगुल से भी मुक्त होंगे जिसके कारण अधिकांश किसानों को आत्महत्या तक करना पड़ता है। एक आंकड़े के अनुसार वर्ष 1997 से 2009 तक कुल 2,16,500 किसानों ने आत्महत्या कर ली है।

वित्तीय साक्षरता केवल एक निवेशक के लिए ही नहीं वरन एक आम बैंक ग्राहक, आम जनता के लिए भी महत्वपूर्ण है। प्रत्येक व्यक्ति अपने विभिन्न कार्यों के लिए अपनी आय के अनुसार योजना बनाता है। उसे प्राथमिकता के आधार पर ख़र्च करने में काफी मुश्किलें आती हैं। बहुधा मेहनत से कमाई गई राशि बेवजह ख़र्च या बर्बाद भी हो जाती है। वहीं जब व्यक्ति वित्तीय साक्षर होगा तो वह अपनी आय-व्यय के विभिन्न पहलुओं को समझेगा, ख़र्च के दुरुपयोग से बचकर राष्ट्र के आर्थिक विकास में सहयोग करेगा।

एक व्यापक वित्तीय साक्षर राष्ट्र संसाधनों सहित व दीर्घकालीन आर्थिक वृद्धि में सहायक होगा। वर्ष 2004-08 में भारत की औसत वृद्धिदर 9 प्रतिशत के आस-पास थी जबकि वैश्विक आर्थिक मंदी नहीं थी। यह वृद्धि अपने आप में परिवर्तन को रेखांकित करता है। इस वृद्धि का एकमात्र कारण अर्थव्यवस्था में बचत दर था जोकि घरेलू बचत का नतीज़ा था। यदि हम इस दृष्टिकोण से देखते हुए देश की अधिसंख्य जनता तक बैंकिंग सुविधा पहुंचाते हैं तो इस तरह हम बचत की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करते हैं और इसका नतीज़ा घरेलू वृद्धिदर के साथ-साथ राष्ट्रीय वृद्धि के रूप में भी प्राप्त होता है।

वित्तीय सेवाओं तक पहुंच का अभाव या वंचितों द्वारा इसका प्रयोग नहीं किए जाने का एकमात्र कारण वित्तीय जागरुकता व साक्षरता का अभाव है। एनसीएईआर और मैक्स न्यूयॉर्क लाइफ के अध्ययन के अनुसार भारत में 60 प्रतिशत मज़दूर अपनी बचत के पैसों को घर पर नगद रूप में रखते हैं और ज़रूरत पड़ने पर उच्च ब्याज दरों पर सूदखोरों से ऋण भी लेते हैं। यह रिपोर्ट देश के वित्तीय समावेशन की स्थिति पर प्रकाश डालता है। वित्तीय समावेशन की कमी को दूर करने के लिए वित्तीय शिक्षा समग्र रूप में आवश्यक है। यह न केवल वित्तीय जानकारी तक सीमित है बल्कि परिवर्तित समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप भी है जो राष्ट्रीय प्रगति का अहम पहलू है।

वित्तीय साक्षरता व समावेशन के प्रयास

भारत में बैंकिंग विकास का लंबा इतिहास रहा है। हमेशा से यह एक कठिन कार्य रहा है कि देश की लगातार बढ़ती जनसंख्या को बैंकों या वित्तीय सेवाओं से कैसे जोड़ा जाए? इसके लिए निरंतर योजना व नीतियां बनाई जाती रही हैं। एक व्यापक वित्तीय व्यवस्था का नेटवर्क भारत में सशक्त हुआ है जिसमें विभिन्न कृषि साख समितियां, डाकघर आदि प्रमुख भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त लघु वित्त संस्थानों, स्वसहायता समूहों सहित विभिन्न गैर-सरकारी संगठन, डाकघर किसान क्लब, वित्तीय फेसिलिटेटर आदि के द्वारा भी वंचितों, कम आय वाले लोगों के वित्तीय समावेशन के लिए प्रयास किए जा रहे हैं।

बैंकिंग सेवाओं तक व्यापक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए बैंकों का राष्ट्रीयकरण, प्राथमिकता क्षेत्र ऋण रियायती दर वंचितों के लिए, लीड बैंक योजना (1969) को अमल में लाया गया। वर्ष 1990 से 2000 के दशक में बैंकिंग नीति का ज़ोर बैंकों को सशक्त व रचनात्मक बनाने पर था। वर्ष 1982 में बैंकों को कृषि क्षेत्र को ऋण उपलब्धता सुनिश्चित कराने के उद्देश्य से पुनर्वित्त प्रदान करने हेतु नाबार्ड का गठन किया गया। इसी प्रकार ग्रामीणों की कृषि व अन्य ज़रूरतों की पूर्ति के लिए ग्रामीण बैंकों की स्थापना वर्ष 1975 में की गई। नाबार्ड द्वारा वर्ष 1992 में बैंक लिंकेज कार्यक्रम प्रारंभ किया गया जिसके तहत स्वसहायता समूहों को ऋण उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया। नवंबर 2005 में रिज़र्व बैंक द्वारा सभी बैंकों से बिना पैसे के नो फ्रील्स खाते खोलने का सुझाव दिया गया, जोकि एक महत्वपूर्ण योजना के रूप में वित्तीय समावेशन के लिए मील का पत्थर साबित हुआ है। वर्ष 2005 में ही 3.9 करोड़ नो फ्रील्स खाते खोले गए। वर्ष 1998 में किसान क्रेडिट कार्ड और वर्ष 2005 में जेनरल क्रेडिट कार्ड का प्रावधान भी समावेशन के लिए महत्वपूर्ण क़दम है।

इन सबके बावजूद अभी भी देश के कुल 6 लाख गांवों तक बैंकों को पहुंचाना संभव व सहज नहीं हुआ है। इस समस्या के समाधान के रूप में साख रहित बैंकिंग की अवधारणा सामने आई। इसके तहत बिजनेस फेसिलिटेटर के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को उनके दरवाज़े पर ही बैंकिंग सुविधा प्रदान किए जाने का प्रावधान है। अप्रैल 2008 में बैंकों ने अवकाश प्राप्त बैंक व सरकारी कर्मचारी को बिजनेस फेसिलिटेटर के रूप में नियुक्त करने की सहमति दे दी है। इसके अतिरिक्त पीसीओ चलाने वाले, पेट्रोल पंप, राशन दुकान, स्कूल के शिक्षक को भी बिजनेस फेसिलिटेटर बनाया जा सकता है।

वित्तीय समावेशन के उपर्युक्त युक्तियों के अलावा इसकी जानकारी व शिक्षा के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक कई माध्यमों से प्रयासरत है। रिज़र्व बैंक ने अपनी स्थापना के 75 वर्ष पूरे करने के उपलक्ष्य में एक नये कार्यक्रम की रूपरेखा व योजना तैयार की और इस पर

व्यापक अभियान शुरू भी हो चुका है। इसके तहत गांवों में 'आउटरीच' नाम से कार्यक्रम चलाना शामिल है।

रिज़र्व बैंक के द्वारा बैंकिंग भूमिका और व्यवस्था पर आधारित कॉमिक बुक्स का प्रकाशन विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं और ब्रेल लिपि में भी किया गया है। रिज़र्व बैंक ने 13 भारतीय भाषाओं में अपनी बहुभाषीय वेबसाइट का निर्माण किया है जिसमें आम आदमी वित्तीय शिक्षा के लिए उपयोगी जानकारी उपलब्ध है। इसके साथ ही स्कूली पाठ्यपुस्तकों में वित्तीय शिक्षा से संबंधित अध्याय भी शामिल किया जा रहा है। कर्नाटक राज्य में यह 2009 से प्रारंभ हो चुकी है। रिज़र्व बैंक और (ओईसीडी-ऑर्गेनाइगेशन फॉर इकोनॉमिक कोऑपरेशन एंड डेवलपमेंट) ने मिलकर विश्व के कई देशों के केंद्रीय बैंकों द्वारा वित्तीय शिक्षा के क्षेत्र में कार्यानुभव के साझेदारी के लिए कार्यशालाओं का आयोजन किया है। साथ ही क्षेत्रीय व्यापार मेले में रिज़र्व बैंक के अधिकारी आम लोगों के बीच वित्तीय जानकारी प्रदान करते हैं। रिज़र्व बैंक की टीम विभिन्न स्कूलों व कॉलेजों में जाकर वित्तीय शिक्षा पर सेमिनार, प्रतियोगिता आदि का भी आयोजन करती है। वित्तीय शिक्षा के लिए रिज़र्व बैंक ने 'युवा विद्वान पुरस्कार योजना' के नाम से एक प्रतियोगिता परीक्षा के माध्यम से देशभर से विश्वविद्यालय स्तर के युवाओं का चयन किया जाता है और उन्हें तीन माह का प्रशिक्षण व छात्रवृति प्रदान की जाती है। इन सारी गतिविधियों व कार्यक्रम के साथ मीडिया का प्रयोग करके निश्चित रूप से वित्तीय समावेशन को तीव्र बनाया जा सकता है।

अन्य देशों में वित्तीय समावेशन के प्रयास

अधिकांश एशियाई देशों ने वित्तीय समावेशन के लिए कई तरीक़े अपनाए हैं। बांग्लादेश अपनी जनता को व्यापक वित्तीय सेवा उपलब्ध कराने के लिए गैर-सरकारी संगठनों का प्रयोग करती है। ग्रामीण बैंक की स्थापना वहां की जनता के लिए वरदान साबित हुई है। पाकिस्तान तथा श्रीलंका सहित कई देशों ने निजी बैंकों के राष्ट्रीयकरण के द्वारा इस दिशा में क़दम बढ़ाया है। कई इस्लामी राष्ट्रों ने इस्लामिक बैंकों की स्थापना की है। भारत में भी केरल में पहले इस्लामिक बैंक की स्थापना से समावेशन में महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल होगी।

दक्षिण अफ्रीका ने मजान्सि खाता के नाम से नेशनल नो फ्रील्स बैंक अकांउट की स्थापना की जिससे 2 लाख खाते खुले। वित्तीय समावेशन के लिए गठित इंग्लैंड के कार्यबल ने वित्तीय समावेशन के लिए तीन प्राथमिकता वाले क्षेत्रों की पहचान की। बैंक तक पहुंच, सुगमता से ऋण प्राप्ति और नि:शुल्क मुद्रा सलाह। वहां एक कोष का गठन कर वित्तीय समावेशन की प्रक्रिया को मज़बूत बनाने का प्रयास हुआ है। अमरीका में नेमली कम्युनिटी रीइंवेस्टमेंट एक्ट के तहत बैंकों को कम आय व गरीब तबकों/वंचितों को वित्तीय सेवा प्रदान करने का कानून ही बना दिया गया है। इसके लिए सभी बैंक बाध्य हैं। अपने नागरिकों को वित्तीय शिक्षा प्रदान करने के लिए अमरीका ने वर्ष 2002 में एक अलग विभाग का गठन किया है। अमरीकी फेडरल रिज़र्व प्रणाली ने वित्तीय साक्षरता के लिए वेबसाइट का पुनर्निर्माण किया है। युनाइटेड किंगडम ने अपनी जनता के बीच सहज वित्तीय शिक्षा के लिए वीडियो फिल्म और छात्रों के लिए पाठ्य सामग्री का निर्माण किया है। ऑस्ट्रेलिया ने वर्ष 2005 में फिनांसियल लिटरेसी फाउंडेशन का गठन किया। इसी प्रकार मलेशिया, सिंगापुर, जापान, रूस आदि देशों ने आमजन के वित्तीय समावेशन व शिक्षा के व्यापक प्रबंध किए हैं।

निष्कर्ष

भारत के संदर्भ में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रेखांकित हो चुकी है। दुर्भाग्यवश सरकार की और रिज़र्व बैंक की नीतियों को निजी वित्त संस्थान व बैंक प्रभावी तरीके से अमल नहीं कर रहे हैं। सूचना के अधिकार के द्वारा पूछे गए एक सवाल के उत्तर के अनुसार निजी बैंकों में नो फ्रील्स अकाउंट नाममात्र का भी नहीं खुला है। सरकार को इस तरफ ध्यान देते हुए बाध्यकारी नियम बनाए जाने की आवश्यकता है। मीडिया, स्कूल एवं ग्रामीणों के बीच वित्तीय समावेशन के लिए शिक्षा हेतु व्यापक पहल की आवश्यकता है। बैंकिंग प्रणाली की कुछ प्रशासनिक व व्यवहारगत खामियों को सुधारने की आवश्यकता तो है ही साथ ही विशाल जनसंख्या के साथ सही तालमेल बिठाने के उपाय किए जाने चाहिए जिससे राष्ट्र आमजन के साथ विकास के लक्ष्य प्राप्त कर सके।

❑

(लेखक स्वतंत्र रूप से लेखन कार्य करते हैं।

ई-मेल : gauravkumar5551@gmail.com)

अपने लेख हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। ई-मेल करने के लिए कृतिदेव फांट इस्तेमाल करें और वर्ड ओपन फाईल exeed.yojana@gmail.com अथवा yojanahindi@gmail.com पर भेजें। एक से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर ही दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार अथवा फोन न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। डाक से भेजे जाने वाले लेखों की एक प्रति सीडी में भी भेजें। वापसी के लिए कृपया टिकट लगा और पता लिखा लिफ़ाफ़ा संलग्न करें।

– वरिष्ठ संपादक

एक अलग तरह की यात्रा

● कुंजांग डोल्मा

विकलांग मुद्दों से जुड़े लोगों को धीरे-धीरे यह महसूस होने लगा है कि अधिकार आधारित दृष्टिकोण अपनाए जाने की आवश्यकता है

मैं लद्दाख में पली-बढ़ी हूं। एक साधारण लड़की की तरह मेरी कामना भी एक सुखी जीवन की रही है। परंतु मैंने कभी भी यह नहीं सोचा था कि सुखी जीवन की मेरी यह कामना लद्दाख के उन विकलांग लोगों के बीच पूरी होगी जो बर्फ़ीले रेगिस्तानी भू भाग में दुष्कर जीवन जीते हुए भी अपनी शारीरिक खामियों के बावजूद सम्मानित जीवन का मार्ग प्रशस्त करने में लगे हुए हैं। हममें से अनेक ऐसे लोग हैं जिनका ध्यान उनकी ओर जाता ही नहीं।

जब मैं पीछे की ओर नज़र डालती हूं तो पाती हूं कि मेरे जीवन का वह निर्णायक क्षण था, जब क़रीब 10 वर्ष पूर्व एक विकलांग कल्याण संस्थान द्वारा आयोजित एक प्रशिक्षण शिविर में मैंने भाग लिया। मेरे लिए विकलांगों के बारे में अपनी जानकारियों के आदान-प्रदान का यह एक आदर्श अवसर था। देखते ही देखते पूरा हॉल ढेर सारे लोगों से भर गया। इनमें से अनेक लोग पहिये वाली कुर्सी पर थे, तो कुछ ऐसे भी थे जो बैसाखियों के सहारे चल रहे थे। मैंने जब उनकी ओर ध्यान से देखना शुरू किया तो पता चला कि उनमें से कई बोल नहीं सकते थे और थोड़े-बहुत लोग जो कुछ बोल सकते थे, वे भी अटक-अटक कर लड़खड़ाते हुए अस्पष्ट रूप से बोल रहे थे।

अचानक ही विकलांग लोगों की यह दुनिया मेरे जीवन का यथार्थ बन गया। एक ऐसा यथार्थ जो बहुत ही कष्टप्रद था। मैं उनके बीच थी फिर भी उनका हिस्सा नहीं थी। सच कहूं तो उन शुरुआती क्षणों में मैं बहुत डरी हुई थी। यह बताना बहुत कठिन है कि ऐसा क्यों हो रहा था परंतु उस समय मुझ पर वही भावना हावी थी। ऐसा लग रहा था कि मैं एक घिनौने यथार्थ का सामना कर रही हूं जो बाहर की ओर नहीं, किंतु मेरे अंदर समाया हुआ था। यह एक ऐसी सच्चाई थी, जो मुझे देखकर ही अंदाज़ लग सकता था। सत्र का प्रारंभ एक प्रार्थना के साथ हुआ, परंतु मन के अंदर उथल-पुथल मचा रहे विचारों के कारण मैं प्रार्थना सुन नहीं पा रही थी। आंखें बंद किए मैं केवल प्रार्थना के सुर में सुर मिलाने की कोशिशभर कर रही थी। मेरे चारों ओर से आ रही आवाज़ों के कारण ऐसा सहज रूप से होता जा रहा था।

अचानक ही ये आवाज़ें थम गईं और चारों ओर सन्नाटा छा गया। उस सन्नाटे में मुझे एक बात समझ में आई। मुझे लगा कि ये लोग विकलांग नहीं हो सकते, विकलांग तो मैं हूं। मानसिक रूप से विकलांग, लाचार और अपने ही पूर्वाग्रहों से ग्रसित हूं। मैं अकारण भय और पूर्णता के मिथ्या अहसास से पीड़ित लग रही थी। स्पष्ट था कि अपने खुद के विकास के लिए मुझे अभी लंबा रास्ता तय करना है। इसकी शुरुआत अभी-अभी हो रही है। यह वह दिन था जब एक युवा लड़की ने अपना जीवन अपने क्षेत्र लद्दाख में विकलांगों की सेवा के लिए समर्पित करने का निर्णय लिया।

पिछले दस वर्षों में मैंने विकलांगता से जुड़े मामलों को समझने की कोशिश की है और लोगों के साथ निकट रूप से जुड़कर काम करना शुरू किया है। मैंने अनुभव किया कि बहुत बड़ी दुनिया के दरवाज़े और दिल विकलांगों के लिए बंद हो चुके हैं। मैंने उनकी क्षमताओं को समझने का प्रयास किया और पाया कि उनमें वह सब करने की क्षमता-संभावना है जिसे कोई भी स्वस्थ व्यक्ति कर सकता है। यदि उन्हें अवसर मिले तो वे अपने जीवन में सब कुछ हासिल करने में समर्थ हैं।

मेरी इस यात्रा, में अनेक भले लोगों का साथ मिला। समान विचारों वाले प्रतिबद्ध समूहों और व्यक्तियों की दूरदृष्टि से मुझे बहुत बल मिला। ये सभी लोग विकलांगों के लिए सम्मानपूर्ण और समान अवसरों का संसार रचने के प्रति कृतसंकल्प थे। मैं नामग्याल लद्दाखी कला एवं संस्कृति संस्थान (एनआईआरएलएसी) से

जुड़ी हुई थी जिसकी एक इकाई विकलांगता के मुद्दों के संवर्धन में लगी हुई थी। परंतु विकलांगता के मुद्दों से जुड़े लोगों में से अनेक को धीरे-धीरे यह लगने लगा था कि अधिकार आधारित दृष्टिकोण (विकलांगों हेतु) अपनाने की आवश्यकता है। एक ऐसा दृष्टिकोण जिसमें विकलांगों के लिए सुविधाओं और विशेष प्रावधानों को सरकार की मेहरबानी नहीं बल्कि संविधान-प्रदत्त उनका अधिकार माना जाएगा। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में गहरे विचार-विमर्श से उद्भूत विचारों में विकलांगों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समान अधिकार देने की बात कही गई है। पीपुल्स एक्शन ग्रुप फॉर एडवोकेसी एंड राइट्स (पगार) के अंतर्गत हम सब एक बार फिर सामूहिक रूप से इस बात के लिए काम कर रहे हैं कि हमें (विकलांगों को) समान अवसर मिले और हमारे साथ समानता का व्यवहार किया जाए।

अपने इस काम को लेकर मैं लद्दाख के अंदरूनी गांवों में गई। इसके दौरान मैंने पाया कि विभिन्न प्रकार की अयोग्यता वाले लोगों से भरे उस कमरे में शुरू में मैंने तो असहजता महसूस की थी। यह अकेली मुझमें ही नहीं थी और भी ऐसे लोग हैं जो इसी तरह की भावना से भरे हुए हैं। लोग अपने विकलांग बच्चों को सामने नहीं आने दे रहे थे। मैंने महसूस किया कि यह सब उनके साथ जुड़े सामाजिक लांछन के कारण था। विकलांग व्यक्ति मुश्किल से घर के बाहर निकलने की हिम्मत करते थे। ऐसा सामाजिक पूर्वाग्रहों के कारण ज्यादा हो रहा था। इन्हीं सब के दौरान हमने गांव-गांव में विकलांगता के प्रति जागरुकता फैलाने का अभियान शुरू किया। इस संदर्भ में हमने विकलांग और स्वस्थ दोनों व्यक्तियों से बातचीत की और उन्हें विचारों के आदान-प्रदान के लिए प्रोत्साहित किया। धीरे-धीरे लोग खुलने लगे और उन सामाजिक प्रथाओं के बारे में सवाल उठाने शुरू किए जो विकलांगों को शर्म और ग्लानि के अंधेरे में छिपकर रहने को विवश करती थी।

यह न केवल मेरे व्यक्तिगत परिवर्तन की शुरुआत थी, बल्कि एक सामाजिक परिवर्तन की भी। तभी से धीरे-धीरे विकलांग गांवों की मुख्यधारा की गतिविधियों में भाग लेने लगे। इसमें छह से सात वर्ष लग गए। परंतु इसने एक ऐसी शक्ति दी कि हम इस विषय को एक अन्य स्तर पर ले जा सकें। एक ऐसा स्तर जो ज़मीनी स्थिति में बदलाव लाने में समर्थ था। आखिरकार अनेक ऐसे विषय हैं जिन पर सत्तासीन लोगों को ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि विकलांग भी आत्मनिर्भर हो सकें और समान अवसरों वाले समाज में सम्मानित जीवन जी सकें। हमने लद्दाख के विकलांगों से संबंधित मुद्दों, जैसे- शिक्षा, स्वास्थ्य और रोज़गार के बारे में सरकारी अधिकारियों से बातचीत करनी शुरू की। यह बातचीत लद्दाख पर्वतीय विकास परिषद (एलएएचडीसी) के स्तर पर हो रही थी जो स्थानीय प्रशासन और नीति-निर्धारण को अमल में लाने का काम करती है। राज्य स्तर पर हमें श्रीनगर में जम्मू और कश्मीर सरकार के साथ संपर्क कर उनसे पैरवी करनी थी। अब धीरे-धीरे एक माहौल बन गया है और विभिन्न क्षेत्रों के लोग इस आंदोलन को मान्यता देने लगे हैं।

फिर भी, आगे का मार्ग काफी कठिन है। लद्दाख के सरकारी भवन इस प्रकार के नहीं हैं कि उनमें व्हील चेयर से पहुंचा जा सके। अनेक कानून केवल कागज़ों तक सीमित होकर रह गए हैं। समय के साथ-साथ मैंने यह महसूस किया है कि समस्या मूलतः सोच की है। यह एक ऐसी समस्या है जिससे कभी मैं भी ग्रस्त थी और उससे पार पाने के लिए मुझे भी संघर्ष करना पड़ा था। यदि समाज अथवा लोग विकलांगों के बारे में अलग तरह से सोचने लगें और अलग नज़रिये से देखें तो इससे स्वाभाविक रूप से उनके साथ सम्मान और समानता के साथ व्यवहार होना शुरू हो जाएगा। अतः लोगों की सोच में परिवर्तन लाने के लिए बुनियादी रूप से कुछ करने की आवश्यकता है। यदि हम कुछ उस तरह का काम कर सकें जो हम घरों में अपने बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल के लिए करते हैं तो लोग विकलांगों को स्वीकारना शुरू करने लगेंगे और समाज में उनकी पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित हो सकेगी। ❑

योजना
आगामी अंक

जून 2011

योजना के जून 2011 अंक का केंद्रीय विषय है **आधार** परियोजना।

जुलाई 2011

योजना का जुलाई 2011 अंक **जनगणना 2011** पर केंद्रित होगा।

भारत में बाघों की संख्या बढ़ी

● सुरेश अवस्थी

ऐसे समय में जब भारत जैव विविधता के संक्रमण के दौर से गुज़र रहा है और अनेक वन्य जीव-जंतुओं के अस्तित्व पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं, बाघों की ताज़ा गणना के परिणाम ठंडी हवा के झोंकों की तरह सुखद अहसास लेकर आए हैं। 28 मार्च, 2011 को केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश की उपस्थिति में बाघों की ताज़ा गणना के आंकड़ों के अनुसार पिछले चार वर्षों में देश में बाघों की संख्या में 12 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वर्ष 2006 की गणना में बाघों की संख्या 1,411 बताई गई थी, जो वर्ष 2010 में हुई गणना के अनुसार 1,706 हो गई है। सबसे प्रभावशाली वृद्धि दक्षिण भारत के कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल राज्यों में फैले नगरहोल, वायनाड-मुदुमुलाई वन क्षेत्र में हुई है, जहां बाघों की संख्या 382 बताई गई है। यह पिछली गणना की तुलना में 36 प्रतिशत अधिक है। उत्तराखंड, महाराष्ट्र और असम में भी बाघों की आबादी बढ़ी है, जबकि मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश में बाघ घटे हैं। मध्य प्रदेश के प्रसिद्ध कान्हा के बाघ आरक्षित क्षेत्र में बाघों की संख्या में आई कमी से सभी पशुप्रेमी हतप्रभ हुए हैं। हालांकि मध्य प्रदेश सरकार के वनमंत्री ने इस पर आपत्ति जताई है। कॉर्बेट, रणथंभौर और मध्य प्रदेश के ही बांधवगढ़ में बाघों की संख्या में हुई वृद्धि प्रभावी कही जा सकती है। भारतीय वन्य जीव संस्थान, देहरादून द्वारा जुटाए गए तथा केंद्रीय पर्यावरण मंत्रालय द्वारा जारी आंकड़ों में वृद्धि का एक सुखद पहलू यह भी है कि पिछली बार पश्चिम बंगाल के सुंदरवन क्षेत्र में जहां बाघों की गणना नहीं हो सकी थी वहां इस बार 70 बाघ पाए गए हैं। आशा है कि ये आंकड़े वास्तविकता के क़रीब होंगे।

भारतीय वन्य जीवन संस्थान के श्री वाई. व. झाला ने रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए बताया कि वर्ष 2010 में बाघों की संख्या 1,571 और 1,875 के बीच रही जिसका मध्यमान 1,706 रहा। पिछली बार की अपेक्षा इस बार वैज्ञानिक रूप से अधिक विश्वसनीय पद्धति से गणना की गई। इस कार्य में लगभग नौ करोड़ रुपये व्यय हुए और क़रीब पांच लाख कर्मचारियों के कठिन परिश्रम से ये आंकड़े जुटाए जा सके। इन लोगों ने देश के 39 अभयारण्यों और आरक्षित वनों में दिन-रात एक कर के इन बाघों की गणना की। वन्यजीव प्रेमियों ने भी इस कार्य में सराहनीय योगदान किया। जो बात सराहनीय है, वह यह कि पंजों के निशान और वनवासियों के अनुमान जैसी गणना विधि के स्थान पर इस बार अधिक वैज्ञानिक पद्धति अपनाई गई। कैमरा और उपग्रह चित्रों के साथ-साथ समय पर खरे उतरे पारंपरिक तरीक़े अपनाते हुए इन बाघों की गणना की गई है। गणना की पूरी परियोजना नमूने के लिए चयनित 10,500 वर्ग किमी क्षेत्र में 800 कैमरा ट्रैप अपना कर बाघों की गिनती की गई। नमूने के क्षेत्र में रिकॉर्ड की गई संख्या के आधार पर बाघों के अन्य विचरण क्षेत्रों में बाघों की संख्या का अनुमान लगाया गया। इसके लिए बाघों के पदचिह्नों, शिकार (बाघों के भोज्य पशुओं) की उपलब्धता, अधिवास की परिस्थितियां और मानवीय विचलन जैसी अतिरिक्त जानकारियों का उपयोग किया गया। इन सब प्रयासों के फलस्वरूप जो परिणाम मिले हैं उन्हें श्री झाला ने अधिक व्यापक और सांख्यिकीय दृष्टिकोण से अधिक विश्वसनीय बताया है। दिसंबर 2009 से दिसंबर 2010 के बीच की गई गिनती के दौरान तीन चरणों में बाघों की संख्या का अनुमान लगाया गया। पहले चरण में प्रशिक्षित कर्मचारियों ने मानक परिपाटी के अनुसार अपने-अपने निर्धारित हलकों में मैदानी आंकड़े इकट्ठा किए। दूसरे चरण में उपग्रह के माध्यम से जुटाए आंकड़ों और चित्रों के अनुसार बाघों के अधिवास और विचरण वाले वन क्षेत्रों की स्थिति का विश्लेषण किया गया। तीसरे चरण में कैमरा ट्रैपिंग का इस्तेमाल किया गया। बाघ विशेषज्ञ के. उल्लास कारंथ द्वारा विकसित कैमरा ट्रैपिंग पद्धति वन्य प्रणालियों की पहचान की प्राथमिक पद्धति के रूप में स्वीकार की गई है। वर्ष 2010 की गणना में 550 बाघों की धारियों के विशिष्ट नमूनों से उनकी पहचान की गई। सुंदरवन में जहां पहली बार बाघों की गिनती की गई वहां 250 वर्ग किमी. क्षेत्र में पांच बाघों के गले में इरीडियम उपग्रह के पट्टे डालकर कैमरा ट्रैपिंग की गई।

पर्यावरण मंत्रालय की इस गणना से स्पष्ट है कि बाघों को बचाने के प्रयास बेकार नहीं गए हैं। दिन-प्रतिदिन कम होने की आशंका के विपरीत ताज़ा गिनती से स्पष्ट होता है कि बाघों के संरक्षण के सरकार के प्रयास काफी हद तक सफल रहे हैं। सरकार के संरक्षणकारी उपायों के साथ-साथ बेहतर जागरुकता और प्रबुद्ध समाज के नैतिक दबाव ने भी अपना कमाल दिखाया है। पिछले दिनों रूस में बाघों के बारे में हुई एक शिखर बैठक में अंतरराष्ट्रीय कोर ग्रुप ने भारत में किए जा रहे प्रयासों की सराहना की थी। परंतु कानूनी प्रतिबंध के बावजूद शिकार का जारी रहना बाघों की संख्या में वृद्धि के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में बाघ की बड़ी क़ीमत उसे संकट के मुंह में ढकेल रही है। चीन जैसे देशों में बाघ के

शरीर का लगभग हर भाग का कथित तौर पर यौनवर्धक दवाओं के निर्माण में उपयोग होता है। इसके अच्छे-खासे पैसे मिलते हैं। इसीलिए बाघ का शिकार तमाम प्रतिबंधों के बावजूद रुक नहीं पा रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस कार्य में वन्यकर्मियों की लापरवाही और उपेक्षा भी कुछ हद तक जिम्मेदार है। वहीं यह भी सच है कि उनके पास संसाधनों का अभाव रहता है। उनके हथियार आदि भी शिकारियों के हथियारों की तुलना में कमज़ोर और अप्रभावी सिद्ध होते हैं। ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार तीस प्रतिशत बाघ संरक्षित अभयारण्यों से बाहर रह रहे हैं जो आसानी से शिकारियों के शिकार बन सकते हैं।

जहां एक ओर बाघों की बढ़ी हुई संख्या को लेकर संतोष हो रहा है, वहीं उनके संकुचित होते इलाक़ों को देखकर चिंता भी हो रही है। चार वर्ष पूर्व की गणना के अनुसार, जहां 1,411 बाघों के विचरण के लिए 93,600 वर्ग किमी क्षेत्र उपलब्ध था। वहीं अब उनका इलाक़ा घटकर 72,800 वर्ग किमी रह गया है। जबकि बाघों की संख्या बढ़कर 1,706 हो गई है। इस प्रकार बाघों के विचरण के इलाक़े में क़रीब 20 हज़ार वर्ग किमी की कमी आई है। जब बाघ बचाने की बात की जाती है तब केवल यही अर्थ नहीं होता कि इस शाही पशु की प्रजाति को केवल आने वाली संतति के लिए बचाया जाए। इसका अर्थ यह भी होता है कि उसके इलाक़े को भी तमाम वन संपदा और जैव प्रजातियों के साथ बचाया जाए। यानी बाघ बचाना, जंगल बचाना, अपना पर्यावरण बचाना है। एक प्रकार से यह मानवीय अस्तित्व को निरापद रखने का अनुष्ठान है। इसलिए यह ज़रूरी है कि बाघों को बचाने के लिए निर्धारित एक लाख वर्ग किमी क्षेत्र को भी बाघ संरक्षण परियोजना में सम्मिलित किया जाना चाहिए। इसके बिना यह अनुष्ठान अधूरा रहेगा। परंतु आर्थिक गतिविधियों, खनन, कृषि और आवासीय परियोजनाओं के विस्तार के कारण बाघों के इलाक़े पर अतिक्रमण हो रहा है और उनके विचरण का दायरा संकुचित होता जा रहा है। जनसंख्या में हो रही वृद्धि के कारण इस संकुचन को रोकना संभव नहीं हो पा रहा है। बाघों के विचरण क्षेत्र के संकुचन के कारण ही वे गांवों में घुस जाते हैं, जहां उन्हें नरभक्षी बताकर मार डाला जाता है। इसलिए बाघों की गिनती के ताज़ा आंकड़े भले ही संतोष देते हों, परंतु इससे निश्चिंत नहीं हुआ जा सकता।

भारत में वन्यप्राणी संरक्षण के इतिहास की दृष्टि से 1970 का वर्ष निर्णायक कहा जा सकता है। वन्य जीवों के संरक्षण की गिरती हुई स्थिति ने चिंताजनक स्वरूप ग्रहण कर लिया था। सरकार ने वर्ष 1970 में बाघों के शिकार पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की पहल पर वर्ष 1972 में वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम अस्तित्व में आया और वर्ष 1973 में प्रोजेक्ट टाइगर की शुरुआत हुई। तत्कालीन पर्यटन एवं नागरिक विमानन मंत्री डॉ. कर्ण सिंह की अध्यक्षता में टाइगर टास्क फोर्स का गठन किया गया। प्रोजेक्ट टाइगर के गठन के अवसर पर श्रीमती गांधी ने कहा था, "बाघ को सबसे अलग-थलग कर नहीं बचाया जा सकता। वह हमारे जटिल और विशाल जीव मंडल का शीर्ष है। उसके अधिवास और विचरण क्षेत्र मानवीय घुसपैठ, वाणिज्यिक वानिकी और पशुओं के चरागाह के कारण संकट में आ गए हैं। सबसे पहले उसके अधिवास को अतिक्रमण से बचाने की ज़रूरत है।" श्रीमती गांधी की दूरदर्शिता से ही वर्ष 1980 में वन संरक्षण अधिनियम अस्तित्व में आया।

अनुमान है कि 20वीं सदी के प्रारंभ में देश में लगभग 40,000 बाघ थे। बाघों की पहली गिनती वर्ष 1972 में की गई थी जिसमें पता चला कि कुल 1,827 बाघ शेष बचे थे। यद्यपि यह मान भी लिया जाए कि पूर्व का अनुमान अतिश्योक्तिपूर्ण था तब भी वर्ष 1972 में बाघों की जो स्थिति और संख्या सामने आई वह चिंताजनक थी। तत्कालीन राजा-महाराजा, नवाबों और जमींदारों के शिकार के शौक ने बाघों को मुसीबत में डाल दिया था। सामंती व्यवस्था के कारण स्वतंत्रता के पूर्व और उपरांत के कुछ वर्षों तक अति विशिष्ट एवं संपन्न वर्ग के लोग ही शिकार किया करते थे। बाद में निजी वनों और चरागाहों, घास के मैदानों को तेज़ी से विकास कार्यों, कृषि, इमारती लकड़ी, ईंधन आदि के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा। बाघ सहित विभिन्न जीव-जंतुओं का वैध और अवैध शिकार होने लगा जिसके कारण उनका अधिवास क्षेत्र संकुचित होता गया। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए वर्ष 2006 में वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 में संशोधन कर प्रोजेक्ट टाइगर को एक वैधानिक प्राधिकरण-राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण (एनटीसीए) का रूप दे दिया गया। इससे पूर्व वर्ष 1969 में नयी दिल्ली में अंतरराष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संघ (आईसीयूएन) की साधारण सभा की एक बैठक हुई जिसमें बाघों और अन्य वन्य जंतुओं के अस्तित्व पर छाए ख़तरे के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए उनके संरक्षण पर ज़ोर दिया गया। उसके बाद धीरे-धीरे इस कार्य में तेज़ी आने लगी। आईयूसीएन ने बाघों और अन्य वन्य जीवों के संरक्षण के लिए वैज्ञानिक प्रबंधन और अनुसंधान के लिए न केवल प्रेरित किया, बल्कि तमाम तक़नीकी जानकारियां और सुविधाएं भी उपलब्ध कराई। पर्यावरण के प्रति बढ़ती जागरुकता के फलस्वरूप वर्तमान में बाघों के लिए संरक्षित स्थानों में उनकी सुरक्षा के उचित प्रबंध तो किए जाते हैं, परंतु वहां विकास योजनाएं नहीं शुरू की जा सकतीं, उन पर प्रतिबंध लगा हुआ है। यदि बाघ इस क्षेत्र से बाहर आबादी के निकट पहुंचते हैं तो उनकी सुरक्षा ख़तरे में पड़ जाती है। एक सबसे बड़ी चुनौती देश के 39 अभयारण्यों के अंदर रह रहे लगभग 50 हज़ार परिवार हैं जो बाघों के अस्तित्व के लिए संकट पैदा कर रहे हैं। सरकार ने उन्हें वहां से बाहर जाने के लिए कई प्रस्ताव रखे हैं, ताकि वे लोग स्वेच्छा से उन जगहों से हट जाएं, परंतु वे अपने को वनवासी बताकर वनों से हटने को तैयार नहीं है। उनकी बात भी सही है। उनकी आजीविका वनों पर आधारित है। सरकार ने उन्हें दस-दस लाख रुपये देने का प्रस्ताव भी किया है। मकान भी बनाए गए हैं, परंतु वे वनों का प्राकृतिक वातावरण छोड़ने को तैयार नहीं हैं। एक अनुमान के अनुसार संरक्षित वन क्षेत्रों में बसे परिवारों के अन्यत्र पुनर्वास के लिए 50 अरब रुपये की आवश्यकता होगी।

बाघों के संरक्षण अभियान को सफल बनाने के लिए पर्यावरण और विकास में तालमेल बैठाना अति महत्वपूर्ण है। पर्यावरण, खनन, विकास और जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं के बीच सामंजस्य बैठाना काफी जटिल समस्या है। जब तक इस विषय के बारे में जागरुकता नहीं आती और उन्हें कार्यनीति में परिवर्तित नहीं किया जाता तब तक बाघों के भविष्य को लेकर निश्चित नहीं हुआ जा सकता। परंतु ताज़ा आकंड़ों से यह संदेश तो मिलता ही है कि संकल्प हठ हो तो जटिल चुनौतियों से भी निपटा जा सकता है। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

पहाड़ों में सिंचाई

● वीरेन्द्र पैन्यूली

देश की खाद्य सुरक्षा के लिए अन्य क्षेत्रों की ही तरह पहाड़ों में भी सिंचित खेती का क्षेत्रफल बढ़ाना होगा। पहाड़ों में सिंचित खेती का प्रतिशत बहुत कम, औसतन बीस प्रतिशत के लगभग ही है। पहाड़ों में सिंचित खेती का प्रसार अन्य कारणों से भी प्राथमिकता में रखा जाना चाहिए।

एक बात तो यह है कि पहाड़ों में औद्योगीकरण बहुत नहीं हुआ है और रोज़गार के अवसर भी बहुत कम हैं। अत: खेतों में बहुत कुछ न होने पर भी पशुपालन के साथ खेती ही पहाड़ों में जीवनयापन का मुख्य साधन है। दूसरी बात यह है कि पहाड़ों के गांव दुर्गम क्षेत्रों में व सड़कों से दूर होते हैं। सड़कें भी कई कारणों से समय-असमय अवरोधित हो जाती हैं। इस कारण वहां खाद्य सामग्री पहुंचाना आसान नहीं होता है। यदि सिंचाई के विस्तार से पहाड़ों पर कृषि पैदावारों की उपलब्धता बढ़ती है तो यह स्थानीय लोगों को संकट के समय ज्यादा आश्वस्त रखेगा। सिंचाई की व्यवस्था न होने से खेतों को बंजर छोड़ना भी कम होगा। सिंचाई से साल में फ़सल चक्रों की संख्या बढ़ने की संभावना बढ़ जाती है। इस कारण खेती से जुड़े काम भी बढ़ जाते हैं। इससे ग्रामीणों के मौसमी प्रवास में भी कमी आएगी। इससे पहाड़ों से पलायन में भी कमी आएगी। जिन जगहों पर पहाड़ी क्षेत्रों में झूम खेती जैसी पद्धति है, वहां भी शायद स्थायित्व आएगा।

पहाड़ों में खेतों के सिंचाई प्रसार के संदर्भ में पहाड़ी भूगर्भीय व भू-आकृति विशिष्टताओं को भी ध्यान में रखना होगा। उदाहरण के लिए पहाड़ी नदियां घाटियों में बहती हैं व जब तक पंपों से नदियों के पानी को ऊपर खेतों तक पहुंचाने की व्यवस्था नहीं की जाती है तब तक नीचे सदानीरा नदियों के बहते रहने के बावजूद कुछ ही मीटर ऊपर स्थित नदियों से लगे खेत भी सिंचाई से वंचित रह जाते हैं। पहाड़ों में कई जगहों पर पीने का पानी भी पंप करके पहुंचाया जाता है और इस पर भारी ख़र्च आता है। निश्चित रूप से सिंचाई के लिए भी पहाड़ों में स्थानीय नदियों पर लिफ्टिंग योजनाएं भी बन रहीं हैं। परंतु विभिन्न तरीक़ों से बरसाती जल ग्रहण करना और उससे ही बरसात के पहले की सिंचाई करना या फ़सलों का जीवन बचाने के लिए बेहद ज़रूरी सिंचाई करने का ही विकल्प पहाड़ी किसानों के पास अभी प्राथमिकता में बना हुआ है।

पहाड़ों में बरसात मुख्यत: मानसून के तीन महीनों में तथा थोड़ी-बहुत जाड़े के महीनों में होती है। पहाड़ी ढलानों में बरसात की अनियंत्रित मार व अप्रवाह से ऊपरी मृदा का भी तेज़ क्षरण होता है। पहाड़ों में मृदा की ऊपरी परत बहुत पतली होती है। खेती के लिए मृदा की यह परत बहुत महत्वपूर्ण होती है । भू-क्षरण व भू-स्खलनों से इसके नष्ट होने के ख़तरे लगातार बने होते हैं। अत: पहाड़ों में जलागम प्रबंधन के आधार पर पहाड़ों में सिंचाई व्यवस्था करना अपेक्षित है। जलागम विकास के सिद्धांतों के अंतर्गत पहाड़ी ढलानों में मिट्टी और पानी का संरक्षण करते हुए खेती की जाती है ।

पहाड़ों पर मैदानों जैसी सिंचाई व्यवस्था नहीं हो सकती है। यहां गहरे-गहरे नलकूपों से सिंचाई नहीं हो सकती और न ही चौड़ी-चौड़ी नहरें बनाई जा सकती हैं। पहाड़ी नहरों को भी पहाड़ी सड़कों की तरह जगह-जगह मुड़ना होता है। पहाड़ी सड़कों की ही तरह वे भू-स्खलनों, पत्थरों के गिरने, नहरों में मलबा आने, बादलों के फटने, आस-पास के निर्माण में बारूद विस्फोटों, आपदाओं आदि से क्षतिग्रस्त भी हो जाती हैं। कई बार लोग इन छोटी सर्पीली नहरों का उपयोग गांवों में आने-जाने के लिए करने लगते हैं तब भी इनको नुक़सान पहुंचता है। उत्तराखंड में इस तरह के छोटे-छोटे घुमावदार पहाड़ों से लगी नहरों को स्थानीय बोलचाल में गुल कहते हैं।

गुलों में पानी ज़मीन से फूटते जल स्रोतों से पहुंचाया जाता है अथवा इनके लिए पहाड़ी धाराओं व नदियों से पतली-पतली नहरें निकाली जाती हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में कठोर चट्टानों से भी गुलें निकाली गई हैं। उत्तराखंड में टिहरी गढ़वाल ज़िले में सौ वर्ष से भी पहले की निकाली गई मलेथा गुल ऋषिकेश-बद्रीनाथ मार्ग पर कीर्तिनगर के पास देखी जा सकती है। कहते हैं कि यह गुल मलेथा के वीरभद्र माधो सिंह भंडारी ने अपनी मेहनत से व अपने बेटे को न्योछावर कर निकाली थी। आज भी लोग इस वीर को मलेथा की लोक गाथाओं व नाटकों के माध्यम से याद करते हैं। किंतु पहाड़ों में पिछले कुछ दशकों से शहरीकरण, वन विनाश, तरह-तरह के निर्माण कार्यों व मौसम में बदलाव आदि के कारण अनेक पहाड़ी स्रोतों व छोटी-छोटी नदियों का जल सूख रहा है। अत: गुलों से सिंचाई में भी दिक़्क़त आ रही है। अधिकतर गुलें सूखी दिखती हैं। पहाड़ी नहरों के उबड़-खाबड़ होने से भी पानी आगे पहुंचाने में मुश्किलें आती हैं।

गुलों में पानी पहुंचाने के लिए पहाड़ी छोटी-छोटी नदियों में स्थानीय लोग पत्थरों को जमा करके या अस्थायी बांध बना कर पानी को गुलों के लिए मोड़ते हैं। उत्तराखंड में गुलों का निर्माण व रखरखाव आदि का काम लघु सिंचाई विभाग करता है।

पहाड़ों में बरसात व ऊपर से बहकर आते बरसाती पानी का प्रबंधन कर सिंचाई की आंशिक ज़रूरत पूरी की जाती है। इस क्रम में ख़ासतौर पर सीढ़ीनुमा खेतों में सिंचाई से फ़ायदा लेने के लिए व सिंचाई से नुक़सान न हो इसके लिए खेतों की ढाल ठीक करना

ज़रूरी होता है। खेतों की ढाल की दिशा भीतर की ओर देना लाभकारी होता है। सीढ़ीनुमा खेतों में ऐसी भी व्यवस्था की जाती है कि ऊपर के खेत से पानी नीचे के खेतों में सिंचाई के बाद पहुंचता है।

बरसाती पानी से सिंचाई के लिए कंटूर या समोच्च रेखा पर क्षैतिज दिशा में नालियां या खाइयां बनाने से भी मदद मिलती हैं। इसमें हल भी कंटूर रेखाओं के समानांतर चलाया जाता है। बीज भी कंटूरों के आधार पर बोए जाते हैं। बरसात का पानी व मिट्टी भी इन कंटूर नालियों या खाइयों में जमा होती है। इससे ज़मीन में नमी रहती है और इसे भी पहाड़ी खेतों में सिंचाई का पानी पहुंचाना माना जा सकता है।

आज पहाड़ों में उद्यान विकास को जलवायु की अनुकूलता के अलावा अन्य कारणों से भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसमें पेड़ों के नीचे गोल थाले बनाकर सिंचाई की जाती है। इनमें बरसात का पानी भी जमा रहता है। अब 'स्प्रिंकलर' व 'ड्रिप' पद्धति का भी उपयोग हो रहा है। इससे पानी की बचत होती है।

बिना बिजली के पहाड़ों पर नदियों से ऊपर खेतों तक पानी पहुंचाने के लिए हाइड्रमों का भी उपयोग हुआ करता है। इसमें बहती पहाड़ी नदियों के पानी के दबाव की ताक़त से ही इन हाइड्रमों के माध्यम से बहते पानी को ऊपर स्तर पर पहुंचाया जाता है। परंतु अब नदियों में कई जगह ये हाइड्रम निष्क्रिय खड़े दिखते हैं। ऐसा नदियों के हाइड्रम के मुहाने से दूर चले जाने के कारण या उनमें मलवा आने के कारण भी हुआ है ।

नदियों या जलाशयों से पंप के माध्यम से देश-विदेशों में सैकड़ों किमी. दूर पानी पहुंचाने के प्रयास होते रहें हैं। ऐसा पहाड़ों में बने बड़े बांध, जलाशयों से सिंचाई के लक्ष्यों को पाने के लिए भी किया जा सकता है । निश्चित रूप से जब तक इन जलाशयों से पानी पंपों द्वारा ऊपर खेतों में नहीं पहुंचाया जाता है तब तक इनसे भी पहाड़ी खेती को सिंचित करने में बहुत योगदान नहीं मिलने वाला है। गुरुत्व की ताक़त से निचली ऊंचाइयों के और मैदानी खेतों की सिंचाई में पहाड़ी मानव निर्मित जलाशयों से मदद मिली है। परंतु ये जलभराव की समस्या भी ला सकते हैं। पहाड़ों में ऊंचाइयों पर छोटे-छोटे जलाशय बनाकर उनसे अपेक्षाकृत कम ऊंचाइयों पर स्थित खेतों में सिंचाई हो सकती है। इन जलाशयों से नीचे ज़मीन में भी नमी पहुंच जाती है। नीचे के भू-जल स्रोतों का पानी बढ़ता है एवं खेतों में भी नमी बनाए रखने में मदद मिलती है।

पहाड़ों में बरसाती जल संग्रह व जलाशय बनाने के लिए सही जगह का चुनाव बहुत ज़रूरी है। जलाशय खेतों के पास बनाने से सिंचाई करने में आसानी रहती है। जलाशय के लिए ऐसी जगह चुननी चाहिए जिसमें ढालों से बहता हुआ पानी सीधे जलाशय तक पहुंच सके। जलाशयों में आया मलबा लगातार साफ़ किया जाना चाहिए।

पहाड़ी सिंचाई में जलाशयों का बहुत महत्व है। ये जलाशय पहाड़ों की ऊंचाइयों पर भी गहरे स्थानों पर होते हैं। ये प्राकृतिक या मानव निर्मित भी हो सकते हैं। मध्य हिमालय में निचले ढाल वाले क्षेत्रों में ये भूगर्भीय कुंड जैसे सीमित आकार की गहराइयों वाले क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इनमें बरसाती जल ढालों से आकर जमा होता है तब पारंपरिक रूप से इनके पानी का विभिन्न उपयोग होता आया है। उत्तराखंड में इन्हे खाल कहा जाता है। खालों का जगह-जगह अतिक्रमण हो गया है या वे मलबे से भर कर अनुपयोगी हो गई हैं। अब जलागम विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत इन्हें पुनः जीवित किया जा रहा है। इससे पहाड़ों में सिंचाई में तथा भूमिगत जल भंडारों में पानी की मात्रा बढ़ाने में मदद मिलेगी। चाल-खालों का पहाड़ी खेतों की सिंचाई में बहुत महत्व है।

नदियों के अलावा पहाड़ों में मुख्य जल स्रोत प्राकृतिक 'सोते' होते हैं। ये पहाड़ों में भूमिगत जल के सतह के ऊपर फूटने से बनते हैं। इससे निकलता पानी बहुत कम व क्षीण भी हो सकता है। कुछ सोते मौसमी भी होते हैं। इन पहाड़ी जलस्रोतों से पानी कुंड में इकट्ठा कर या सीधे इन्हीं से नहरें निकाल कर पहाड़ी खेतों तक पानी पहुंचाया जाता है। इनसे न तो लंबी दूरी तक के लिए नहरें निकाली जा सकती हैं और न ही बड़े क्षेत्रफल में सिंचाई हो सकती है।

वास्तव में जब पहाड़ों में प्राकृतिक स्रोतों के पानी का उपयोग किया जाता है तो वह भूमिगत जल भंडार का ही उपयोग करना होता है। इनके जल से कई जगहों पर तो धान की खेती भी की जाती है। सोते जो बारहमासी होते हैं उनका पानी तो रात-दिन बहता ही रहता है चाहे कोई उनका उपयोग करे या न करे। वैसे ही जैसे सूरज की रोशनी। रात में शायद ही कोई पानी भरने आता है। दिन में भी कम ही उपयोग होता है। अतः यदि स्रोतों को जिंदा रखने के कार्य भी चलते रहें तो बिना किसी विरोध के बेकार बहने के स्थान पर उस पानी को सिंचाई के काम लाया जा सकता है।

पहाड़ों में नहरों का रखरखाव एक बड़ी समस्या है। खुली नहरों में भूस्खलन व पहाड़ों में पत्थर व मिट्टी गिरने से नहरों में आगे पानी बहना बंद हो जाता है। इसके अलावा नहरों के भीतर खरपतवार, काई आदि होने से नहरों में पानी के प्रवाह में ही अवरोध नहीं आता है, बल्कि तेज़ी से फ़ैलते खरपतवारों से फ़सलों को बहुत नुक़सान होता है। पहाड़ों में चूंकि नहरें अक्सर जंगली क्षेत्रों से होकर गुज़रती हैं अतः जैविक गतिविधियों के कारण खरपतवारों के उगने की संभावनाएं बहुत प्रबल होती हैं। पहाड़ों में यदि नहरें पक्की न हों तो उनके जगह-जगह टूटने की संभावनाएं बहुत ज्यादा होती हैं। साथ ही जल रिसाव की समस्या भी पैदा हो जाती है। पहाड़ी ढलानों के कारण ज़मीन के नीचे व ऊपर यह अलग-अलग तरह के प्रभाव छोड़ती है। ज़मीन के भीतर यह भूस्खलन की समस्या पैदा करती है। इससे ज़मीन ढह भी सकती है। तेज़ बरसात व बादलों के फटने की आपदाओं के समय टूटी या अवरोधित नहरों की सूचना जिला मुख्यालय में पहुंचने में देर हो जाती है। इस कारण मरम्मत में भी देरी होती है।

जैसे बरसात के मौसम में पहाड़ों में कई जगहों पर मौसमी जलस्रोत फूटते हैं। उसी प्रकार कई मौसमी नदी-नाले भी जगह-जगह पैदा हो जाते हैं। इनके पानी को भी पहाड़ों में सिंचाई के काम लाने की बहुत संभावनाएं हैं। इन संभावनाओं पर भी काम होना चाहिए। नयी वैज्ञानिक संभावना सिंचाई के लिए पहाड़ी कोहरे के उपयोग की भी है। साथ ही नमी बचाने की भी ज़रूरत है।

पहाड़ों में, खासकर उत्तराखंड में किसान की भूमिका में मुख्यतः महिलाएं ही होती हैं। अतः कोई भी ऐसा प्रयास जिससे खेती में लगे श्रम, समय व धन का अच्छा प्रतिदान मिलता है व जिससे घर वालों का भूखे रहने का डर कम होता हो वह सीधे तौर पर महिलाओं की चिंताओं को भी कम करेगा। हमें यह न भूलना होगा कि पुरुषों के ज्यादातर बाहर रहने की मज़बूरी के कारण भी पहाड़ की महिलाओं को घर चलाने की चिंताओं से जूझना पड़ता है। ❑

(लेखक सामाजिक कार्यकर्ता
व पर्यावरण वैज्ञानिक हैं।
ई-मेल : vkpainuly@rediffmail.com)

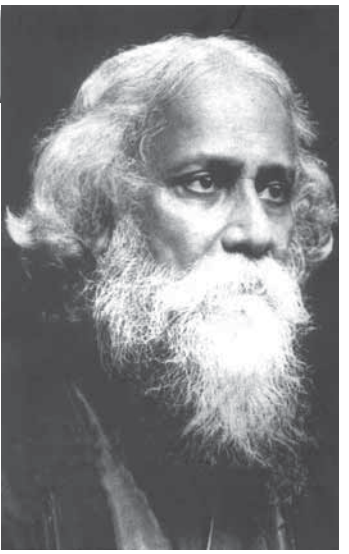

रवीन्द्रनाथ टैगोर
आसमां के पते पांख पर देखना

● सरोज कुमार वर्मा

रवीन्द्रनाथ सांस्कृतिक समन्वय के अग्रदूत थे। यदि भारत को मनुष्यता के विकास में आगे के रचनात्मक कार्य में सहायक होना है, तो उसे अपनी एकता को पहचानना होगा। इस एकता को पहचाने में स्व. रवीन्द्रनाथ टैगोर का साहित्य हमारी सहायता करेगा। उसे पढ़कर हम भारतवासियों की विशेषताओं को पहचान सकेंगे। जैसे-जैसे हम एक-दूसरे के साहित्य को निकट से देखेंगे, वैसे-वैसे विषमता दूर होगी और समानता बढ़ेगी। हम अपने आपको एक ही भारतीयता के सूत्र में गूंथा हुआ पाएंगे

अपनी काव्यकृति *गीतांजलि* के द्वारा भारत को प्रथम नोबेल पुरस्कार दिलाने वाले रवीन्द्रनाथ टैगोर दार्शनिक कवि हैं। दार्शनिक कवि इसलिए कि एक तो वे दार्शनिक हैं और कवि भी हैं और दूसरे इसलिए कि उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों को कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया है। मगर उनकी प्रतिभा इन्हीं दो आयामों- दर्शन और साहित्य में सिमटी हुई नहीं है, बल्कि उसका फलक और भी विस्तृत है। वे उच्च कोटि के संगीतकार, ख्यातिलब्ध चित्रकार तथा सौंदर्यशास्त्री भी हैं। दरअसल, उनका व्यक्तित्व उस विशाल सागर की तरह है जिसमें कई विधाओं की नदियां आकर समन्वित होती हैं। अत: यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि टैगोर समन्वय के प्रतीक पुरुष हैं। डॉ. रामविलास शर्मा अपने उपर्युक्त कथन में और डॉ. रेवती रमण पाण्डेय अन्यत्र इसकी गवाही भी देते हैं।

मगर कालांतर में जिसकी गवाही विद्वानों ने दी है, उस समन्वयवादिता का संस्कार टैगोर को अपने पारिवारिक परिवेश से ही मिला था। उनके घर में वैदिक ऋचाओं के साथ-साथ शेक्सपीयर के उद्धरण भी अनुगूंजित होते थे। उपनिषद के श्लोकों के साथ-साथ विज्ञान के सूत्र भी पढ़े जाते थे। भारतीय संगीत के साथ-साथ यूरोपीय संगीत का आलाप भी सुनाई पड़ता था तथा संस्कृत और बांग्ला के साथ-साथ फारसी और अंग्रेज़ी भाषाओं का अध्ययन भी किया जाता था। इन सबके कारण ही समन्वयवाद की पृष्ठभूमि उन्हें विरासत में ही मिली। इस विरासत को उन्होंने अपनी प्रतिभा और अपने श्रम से बाद में और पल्लवित-पुष्पित किया जिसके चलते वे इतने विशिष्ट और व्यापक हो सके। इसलिए इस विशिष्टता और व्यापकता की तह में जाकर पड़ताल करने मात्र से स्रोतों की पहचान हो जाती है जो इन्हें विभिन्न दिशाओं और पहलुओं से प्रभावित तथा प्रेरित करते रहे हैं।

इस क्रम में यह रेखांकित किया जा सकता है कि टैगोर पर उपनिषदों, संस्कृत वाङ्मय, वैष्णव कवियों, सूफियों, बाउलों, बौद्ध दर्शन के सिद्धांतों, तत्कालीन राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय बौद्धिक क्रांतियों तथा पश्चिम के दार्शनिकों एवं कवियों का गहरा प्रभाव पड़ा है। इनमें उपनिषदों के प्रभाव का प्रमाण उनकी कुछ दार्शनिक कृतियों आदि में जिनमें *छांदोग्य, ईश* तथा *श्वेताश्वतर* आदि उपनिषदों के उद्धरण प्रचुरता में मिलते हैं तो संस्कृत वाङ्मय से प्रभावित होने का सबूत उनकी रचनाओं में *रामायण, महाभारत, गीतगोविंद, रघुवंश, शाकुंतलम, कुमार संभवम्, मेघदूत* तथा *ऋतुसंहार* आदि ग्रंथों पर किए जाने वाले गहन विमर्श हैं। इसीलिए वैष्णव कवियों के प्रभाव की चर्चा एस.एन. दासगुप्त इन शब्दों में करते हैं– हमारे प्राचीन वैष्णव कवियों ने शाश्वत देव-प्रेम को गाया है, यद्यपि उन्होंने सांसारिक प्रेम की भाषा का प्रयोग किया है। टैगोर की कविता में हमें प्राय: वैष्णव कवियों का ही आभास होता है एवं उनके दिव्य प्रेम गीतों में हमें जयदेव, विद्यापति एवं चंडीदास की अनुभूतियों की झांकी मिलती है। बंगाल के लोकगीत गाने वाले बाउलों के प्रभाव के बारे में टैगोर स्वयं कहते हैं कि– "जब मैं सियालदह में था तो मैं बाउलों से

निकट का संबंध रखता और उनसे बातचीत किया करता था। यह यथार्थ है कि मैंने बाउल गीतों की ध्वनियों को अपने अनेक गीतों में मिलाया है।" बौद्ध कथाओं पर आधारित उनके बहुत से आलेख एवं गीत उनके बौद्ध दर्शन से प्रभावित होने के साक्ष्य हैं तो एक फ्रेंच लेखक का यह कथन– "हमारे काव्य, दर्शन एवं कला में ऐसी कोई चीज़ नहीं है जिससे टैगोर अनभिज्ञ हों," उन पर पश्चिम के प्रभाव को उज़ागर करता है। यह प्रभाव उन्होंने शेक्सपीयर, मिल्टन, शेली तथा वर्ड्सवर्थ आदि साहित्यकारों से तो ग्रहण किया ही था, अपने समकालीन बर्गसां, क्रोचे, रसेल, डिवी, केसरलिंग तथा स्वेतजर आदि चिंतकों से व्यक्तिगत विचार-विमर्श करके भी ग्रहण किया था। इसीलिए तो अनेक पाश्चात्य विद्वानों को उनके गीतों पर ईसाई धर्म के प्रभाव की प्रतीति हुई और उन्हें लगा कि *गीतांजलि* का ईश्वर ईसा मसीह जैसा है। इस प्रकार विभिन्न आयामों से बहुविध प्रभाव ग्रहण करने के कारण ही टैगोर का चिंतन समन्वयवादी हो सका और वे भिन्न-भिन्न विचारधाराओं और विधाओं में सामंजस्य बिठाने में सफल हो सके।

इस सफलता का सबसे ठोस सबूत टैगोर की दार्शनिक स्थापनाएं हैं। दर्शन के क्षेत्र में परम तत्व को लेकर हमेशा दो विरोधी विचारधाराएं वजूद में रही हैं। एक उसे अमूर्त और निराकार मानती है जबकि दूसरी सगुण और साकार। परंतु टैगोर के यहां ऐसा कोई विरोध दिखाई नहीं देता क्योंकि वे इन दोनों का समन्वय करते हैं। इसलिए उनका परमतत्व संबंधी विचार अमूर्त एकवाद तथा एक विशेष प्रकार के ईश्वरवाद का अनूठा एवं धार्मिक समन्वय है। हिरेन्द्र नाथ दत्त इसे मूर्त एकवाद की संज्ञा देते हैं। यह एकवाद इसलिए है क्योंकि टैगोर परम तत्व को एक मानते हैं, परंतु यह मूर्त भी है क्योंकि यह एक सत् विभिन्नताओं तथा अनेकताओं का निषेध करता हुआ अमूर्त रूप में एक है। यद्यपि ऐसा कहना अपने-आप में घातक है क्योंकि यह सगुण और निर्गुण का समन्वय है जो संभव नहीं लगता। परंतु टैगोर के अनुसार यह असंभावना सिर्फ़ तार्किक दृष्टिकोण से लगती है अनुभव के स्तर पर नहीं। इसलिए बुद्धि से यह भले असंभव लगे, अनुभूति से नहीं लगती। अनुभूति के बल पर ऐसा संभव है और वे अनुभव से ही ऐसा कहते हैं। उन्होंने स्वीकार किया है कि उनका धर्म कवि का धर्म है, इसलिए वे जो कुछ भी जानते हैं अपनी अनुभूति के द्वारा जानते हैं तर्क ज्ञान के द्वारा नहीं। इसलिए वे जो कुछ भी कहते हैं वह अपनी अनुभूति के बल पर ही कहते हैं। ऐसी अनुभूतियों के बल पर जहां उन्हें असीम आनंद का अनुभव हुआ है तथा ऐसा महसूस हुआ है कि उनकी अनुभूतियां असीम को छूकर जाती हैं।

टैगोर इसी अनुभूति के बल पर मनुष्य के ससीम-असीम पक्ष की व्याख्या और अपने मानव धर्म की स्थापना भी करते हैं। टैगोर मनुष्य को धरती का पुत्र और स्वर्ग का उत्तराधिकारी मानते हैं, क्योंकि उनके अनुसार मनुष्य का प्राकृतिक पक्ष ससीम है जबकि उसका आध्यात्मिक पक्ष असीम है। इसलिए मनुष्य हमेशा शारीरिक सीमाओं के पार जाकर असीम ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है। परंतु ऐसा एक तरफ से ही नहीं होता दूसरी तरफ से भी होता है। इसलिए ईश्वर भी हमेशा अपने को मनुष्य के सामने प्रकट करने का प्रयास करता है। लेकिन ऐसा वह किसी बाध्यता के कारण नहीं करता, बल्कि केवल आनंद के लिए करता है। टैगोर के अनुसार ईश्वर प्रेम है और चूंकि प्रेम प्रेमी-प्रेमिका के द्वैत के बिना संभव नहीं हो सकता इसलिए ईश्वर मनुष्य का सृजन कर स्वयं को उससे पृथक कर लेता है और फिर जुदाई के बाद मिलन का आनंद प्राप्त करने के लिए उसके पास पहुंचने का प्रयास करता है। इस प्रकार ईश्वर और मनुष्य प्रेमी-प्रेमिका का खेल खेलते हैं। ईश्वर आनंद के लिए मनुष्य के सामने अपने को प्रकट करना चाहता है और मनुष्य अपने असीम पक्ष के कारण ईश्वर का सान्निध्य चाहता है। टैगोर इसे अपनी एक कविता में इस प्रकार कहते हैं :

असीम चाहता है सीमा का निविड़ संग
और सीमा चाहती है
असीम में निज को विलीन कर देना;
बंधन अपनी मुक्ति खोज़ता फिरता है
मुक्ति बंधन में निवास चाहती है।

टैगोर अपने मानव धर्म की स्थापना भी इसी आधार पर करते हैं। चूंकि उनके अनुसार मनुष्य केवल जड़, जीवन और मन तक सिमटा हुआ महज़ एक जैविक प्राणी भर नहीं है, बल्कि इससे अतिरिक्त भी कुछ है, इसलिए इस अतिरिक्त के कारण वह अपनी सीमा से ऊपर उठकर असीम को पाने का प्रयास करता है। टैगोर के अनुसार, उस असीम को पाने का प्रयास ही मनुष्य का धर्म है। टैगोर अपने इस धर्म को मानव धर्म की संज्ञा देते हैं क्योंकि इसमें मनुष्य को प्रकृति से ऊपर उठाकर उसकी श्रेष्ठता दिखाने का प्रयास किया गया है। इसीलिए वे स्पष्ट रूप में घोषित करते हैं– ''मेरा धर्म मानव धर्म है, जो असीम मानवता में परिभाषित होता है।'' टैगोर अपने इस मानव धर्म की व्याख्या दो ढंग से करते हैं– एक में वे ईश्वर को मानव के रूप में उपस्थित करते हैं और दूसरे में मानव को ईश्वर के रूप में अभिव्यक्त करते हैं। इसीलिए इसकी व्याख्या क्रम में वे कभी मानव को ईश्वर तक पहुंचा देते हैं तो कभी ईश्वर को मानव तक उतार लाते हैं। इस कारण उनका ईश्वर एक अर्थ में ईश्वर है तो दूसरे अर्थ में परम पुरुष भी है।

टैगोर इसी परम पुरुष का गुणगान अपनी कविताओं में करते रहते हैं। *गीतांजलि* की कविताएं इसका बेहतरीन साक्ष्य हैं। *गीतांजलि* सबसे पहले बांग्ला में लिखी गई। बाद में जब टैगोर अस्वस्थ हुए तो उन्होंने इसके कई गीतों का स्वयं अंग्रेज़ी अनुवाद किया और जून 1912 में जब विदेश गए तो इसे साथ लेते गए। वहां इंग्लैंड में चित्रकार रॉथेन्स्टीन से मिलने पर उन्होंने अपने कुछ गीत रॉथेन्स्टीन को दिखाए, जिसे पढ़कर वे भावविभोर हो उठे। फिर रॉथेन्स्टीन ने ही इन गीतों को अंग्रेज़ी के प्रख्यात कवि यीट्स को पढ़ने के लिए दिया और यीट्स इन्हें पढ़कर इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने 10 जुलाई को टैगोर के सम्मान में एक भोज का आयोजन किया और इस अवसर पर टैगोर की प्रशंसा करते हुए कहा– "रवीन्द्र नाथ के सम्मान में भाग लेना मेरे जीवन की सबसे बड़ी घटना है। मेरे पास उनके सौ गीतों का, जो मूल रूप में बांग्ला में लिखे गए हैं, अंग्रेज़ी गद्यानुवाद हैं। ये गीत कवि ने पिछले दस वर्षों के बीच लिखे हैं। मैं ऐसे किसी कवि को नहीं जानता जिसने अंग्रेज़ी में भी इन दस वर्षों में ऐसे सुंदर गीत लिखे हों। मैं जब इनको पढ़ता हूं तो इनके सौंदर्य पर मुग्ध हो जाता हूं। श्री टैगोर संगीतज्ञ भी हैं। अपने गीतों का स्वर वे स्वयं निर्धारित करते हैं। बांग्ला में उनके गीत घर-घर प्रचलित हैं। इन गीतों का विषय ईश्वर प्रेम है। मैंने चाहा कि यूरोप के सारे साहित्य में से इन गीतों के टक्कर का गीत निकालूं, पर मैं असफल रहा। श्री टैगोर प्रकृति के परम प्रेमी हैं। उनकी कविता मार्मिक स्पंदन से पूर्ण

है और उनमें प्रेम पूरी तरह व्याप्त है।"

इसके बाद यीट्स ने इन गीतों को संपादित करके एक पांडुलिपि तैयार की और जिसका नाम *गीतांजलि* रखा गया। इसकी भूमिका उन्होंने स्वयं लिखी और रॉथेन्स्टीन ने इसके मुखपृष्ठ के लिए टैगोर का चित्र बनाया। फिर इन दोनों ने मिलकर लंदन की इंडिया सोसाइटी को इसके प्रकाशन के लिए तैयार किया, जिसने अपने पहले संस्करण में इसकी कुल 750 प्रतियां प्रकाशित की। इस काव्यकृति के अंग्रेज़ी में प्रकाशित होने के साथ ही टैगोर इंग्लैंड में विख्यात हो गए। इसलिए वहां रहते हुए उनकी मुलाक़ात रसेल, बर्नाड शॉ, एच.जी. वेल्स तथा जॉन मेसफील्ड जैसे विश्वप्रसिद्ध साहित्यकारों से हुई। इंग्लैंड में कुछ दिन रहने के बाद टैगोर अक्तूबर 1912 में अमरीका गए वहां उनकी प्रसिद्धि उनसे पहले ही पहुंच चुकी थी। इसलिए अमरीका के कई विश्वविद्यालयों में उनके भाषण हुए और वहां की कई सभाओं-गोष्ठियों में उन्हें सम्मानित किया गया। रोचेस्टर में उनकी मुलाक़ात *गीतांजलि* का जर्मन अनुवाद पढ़ चुके जर्मन दार्शनिक रूडोल्फ यूकेन से हुई। अमरीका से टैगोर जून 1913 में इंग्लैंड लौटे और वहां से अक्तूबर 1913 में भारत आ गए। यहां उन्हें नोबेल पुरस्कार दिए जाने की घोषणा हुई। यह पुरस्कार उन्हें *गीतांजलि* के लिए मिला था, जिसका समाचार 13 नवंबर, 1913 को कलकत्ता के *दैनिक स्टेट्समैन* में इस प्रकार छपा– ''रवीन्द्रनाथ टैगोर को इस वर्ष का साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार दिया गया।'' इस समाचार के छपते ही टैगोर पूरी दुनिया में प्रसिद्ध हो गए और भारत का मस्तक गर्व से ऊंचा हो गया।

टैगोर ने अपनी कविता के माध्यम से न केवल देश का मस्तक ऊंचा किया बल्कि भाषा की राह में आई कठिनाइयों को दूर कर यहां के साहित्य को नयी दिशा भी दी। राहुल सांकृत्यायन ने उनकी जयंती पर लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में भाषण देते हुए इसका उल्लेख किया था। उन्होंने कहा था– "भारत के लिए रवीन्द्र बहुत महत्व रखते हैं। वह भारत के साहित्य के इतिहास में एक नये युग के प्रवर्तक हैं। सिर्फ़ बांग्ला भाषा के साहित्य में ही नहीं, सारी भारतीय भाषाओं के साहित्य में चाहे आप हिंदी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, उड़िया जैसी उत्तर की इंडो-यूरोपीय भाषाओं को लीजिए या दक्षिण की तेलुगू, कन्नड़ जैसी द्रविड़ भाषाओं को। मैं सबसे पहले अधिक बोली जाने वाली तथा बारह सदियों से सुंदर-समृद्ध साहित्य रखने वाली हिंदी भाषा का उदाहरण देता हूं। बीसवीं सदी के द्वितीय दशाब्द में पहुंचने पर उसके पथ में कई समस्याएं उठ खड़ी हुई थीं। ऐसी समस्याएं जिनको दूर किए बिना वह एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती थी। ये समस्याएं थीं शब्दों को चुनने, सजाने, संबंध स्थापित करने के संबंध में। हिंदी की इस समस्या का हल किया निराला और उनके साथी कवियों, प्रसाद और पंत ने। इस कार्य में पथ-प्रदर्शन किया रवीन्द्र की कविता ने। हां! पथ-प्रदर्शन का अर्थ अनुकरण नहीं समझना चाहिए। अनुकरण के बल पर उच्च साहित्य का निर्माण नहीं हो सकता। हमारे नवयुग प्रवर्तक कवि हिंदी कविता में कुछ त्रुटियों का अनुभव कर रहे थे, उन्हें पहचानने में रवीन्द्र की कविता ने सहायता की। फिर इन्होंने ही उन्हें दूर करने का सफल प्रयत्न किया। यही बात दूसरी भारतीय भाषाओं के संबंध में है। रवीन्द्र ने सारे आधुनिक भारतीय काव्य साहित्य को एक नयी दिशा दी जिसमें यद्यपि प्राचीन को तिरस्कार की वस्तु नहीं समझा गया तथापि सदियों की संकीर्णता और दुरभिमान के लिए यहां कोई स्थान न था; प्रगति और विश्व-प्रेम इस नवीन कविता युग का प्राण है।

टैगोर के अनुसार, यह प्रगति और प्रेम प्रकृति के साथ साहचर्य से संभव हो सकता है। उस पर विजय प्राप्त करने की आकांक्षा से नहीं। इसीलिए उन्होंने भारतीय साहित्य की तुलना पश्चिम के साहित्य से करके यह दर्शाया है कि यहां का साहित्य प्रकृति के साथ गहरे जुड़ा रहा है। इस क्रम में उन्होंने कालिदास और शेक्सपीयर की तुलना करके यह स्पष्ट किया है कि शेक्सपीयर के नाटकों में प्रकृति की उपेक्षा नहीं होने के बावजूद उसकी उपस्थिति ऐसी प्रतिकूल शक्ति के रूप में है जिस पर जीत हासिल करनी है। यही हाल *ओथेलो, हेमलेट, मैकबेथ* एवं *किंलीअर* आदि रचनाओं का भी है। वहां भी प्रकृति क्रूर और वीभत्स रूप में ही चित्रित हुई है। जहां तक मिल्टन का सवाल है तो उसके *पैराडाइज लॉस्ट* में सुंदर उद्यान का चित्रण होने के बावजूद उसमें प्रकृति और आत्मीयता जैसी कोई बात नहीं है। परंतु कालिदास की कृतियों में ऐसा नहीं है। वहां पार्वती के सौंदर्य की तुलना पल्लवित लता से की गई है तो शकुंतला के रक्ताभ अधरों का साम्य कोमल किसलय से बताया गया है। इसी तरह *मेघदूत* का यक्ष भी नदी की लहरियों में ही अपनी प्रेयसी की भौहों की छवि निहारता है। इस प्रकार कालिदास की रचनाओं में प्रकृति के ऐसे मधुर, उदात्त और हृदयग्राही चित्र मिलते हैं कि लगता है कि वह जीवंत होकर बोल उठी है तथा मनुष्य के सारे क्रिया-कलाप और उसके सुख-दुख की बराबर की भागीदार है। टैगोर के मुताबिक वर्ड्सवर्थ तथा शेली आदि बाद के अंग्रेज़ कवियों में प्रकृति का जो मनोहर वर्णन है वह भारत के प्रकृति-दर्शन से प्रभावित होने के कारण ही है।

टैगोर का एक आयाम कला और सौंदर्य का भी है और यहां भी वे अपना विचार समन्वयवादी दृष्टिकोण से ही रखते हैं। उनके अनुसार संसार में जो ऋतुओं का नृत्य है, धूप-छांव की आंख-मिचौली है और इसी प्रकार के ढेर सारे रंगों से रंगा हुआ जन्म-मृत्यु के बीच जीवन है, यह सब इसलिए महत्वपूर्ण है कि इनमें सामंजस्य बना हुआ है और यही सामंजस्य हमारी आत्मा में भी है। इसलिए हम इनका बोध कर पाते हैं। इस संबंध में टैगोर स्पष्ट रूप से कहते हैं कि सृजन पूर्णता के अनंत आदर्श और उसके साक्षात्कार के शाश्वत सातत्य का सतत सामंजस्य है। यह सामंजस्य चित्र की रंग-व्यवस्था, संगीत के स्वर-अनुपात तथा कविता के शब्द-संयोजन सभी जगह देखी जा सकती है और इसी कारण इन सब में सौंदर्य की अनुभूति होती है। टैगोर के सौंदर्यशास्त्र की उत्कृष्ट पूर्णता उनके *दुइनारी* के गीत में हुई है, जहां अनेकता में एकता का सिद्धांत मिलता है एवं चिंतन एवं कला के लिए जो भी जीवंत है, सबका एकीकरण हुआ है।

वस्तुत: टैगोर बहुआयामी प्रतिभा के धनी एक ऐसा व्यक्तित्व हैं जिनको गढ़ने के लिए काल को सैकड़ों वर्ष की साधना करनी पड़ती है। इसलिए उनकी 150वीं जयंती पर उन्हें याद करते हुए मैं दिनेश शुक्ल की ये पंक्तियां उद्धृत करना चाहता हूं :

नदी अच्छी लगी तेज़ बहती हुई,
फूल अच्छा लगा शाखा पर देखना।
उस परिंदे की आंखों में बादल बसे
आसमां के पते पांख पर देखना। ❑

(लेखक बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर के दर्शनशास्त्र विभाग में प्रवक्ता हैं)

गढ़वाल-हिमालय का व्यापक अध्ययन

● देवेन्द्र उपाध्याय

कृति : केदारखण्ड; **लेखिका** : हेमा उनियाल; **प्रकाशक** : तक्षशिला प्रकाशन, नयी दिल्ली 11002; **प्रथम संस्करण** : 2011; **पृ.** : 540; **मूल्य** : ₹ 540

उत्तराखंड के गढ़वाल-हिमालय को भौगोलिक दृष्टि से पुराणों में केदारखंड नाम दिया गया है जबकि कुमाऊं को कूर्मांचल कहा गया है। हिमालय के पांच खंडों में से दो खंड उत्तराखंड में हैं। उत्तराखंड के कुमाऊं और गढ़वाल मंडलों के बारे में अलग-अलग और संयुक्त रूप से दशकों से अध्ययन होता रहा है और इन पर अब तक अनगिनत पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

गढ़वाल के धर्म, संस्कृति, वास्तुशिल्प एवं पर्यटन पर हेमा उनियाल की शोधपरक पुस्तक *केदारखंड* प्रकाशित हुई है। इससे पूर्व वह *कुमाऊं के प्रसिद्ध मंदिर* पुस्तक से अपने स्वाध्याय, खोज और गहन चिंतन की जिजीविषा का बोध करा चुकी हैं।

प्रस्तुत पुस्तक *केदारखंड* उनकी 6 अक्तूबर, 2005 से 12 मई, 2010 के बीच की गई 18 शोधयात्राओं का परिणाम है। इन शोधयात्राओं के दौरान 125 से अधिक मंदिरों की यात्रा कर लेखिका ने 314 में से 304 चित्र स्वयं खींचे हैं। यह अपने कार्य के प्रति प्रतिबद्धता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

पहाड़ी क्षेत्रों की यात्रा कितनी जटिल और जोख़िमपूर्ण होती है, यह वही समझ सकता है जो जन्म या कर्म से पहाड़ों से जुड़ा रहा है और जिसने यहां के दुर्गम स्थलों की यात्रा की है। आज भी दर्जनों ऐसे ऐतिहासिक मंदिर हैं जहां पहुंचने के लिए मीलों पैदल यात्रा करनी पड़ती है। हेमा उनियाल को भी ऐसे वह कई मंदिरों की यात्रा करनी पड़ी तभी वह *केदारखंड* पुस्तक को इतने बेहतर ढंग से प्रस्तुत करने में सफल रही हैं। अपनी यात्रा के जोखिमपूर्ण अनुभवों का भी लेखिका ने कई स्थानों पर उल्लेख किया है। लेखिका के ये अनुभव पाठकों के लिए भी प्रेरक और उपयोगी हैं तथा धार्मिक-साहसिक पर्यटन या अनूठे प्राकृतिक सौंदर्य स्थलों तक पहुंचने के लिए लालायित पर्यटकों के लिए यह पुस्तक मार्गदर्शक का कार्य करती है। गढ़वाल मंडल के अंतर्गत हरिद्वार, देहरादून, पौड़ी गढ़वाल, टिहरी, उत्तरकाशी, चमोली और रुद्रप्रयाग जिले आते हैं। लेखिका ने इन जिलों के प्रमुख मंदिरों व दर्शनीय स्थलों का चित्रण किया है। यात्रा मार्ग को जिले के अनुसार निर्धारित करना संभव नहीं है लेकिन उन जिलों के मंदिरों व दर्शनीय स्थलों को जिले के क्रम में रखना भी कम दुष्कर कार्य नहीं है। इसमें लेखिका की लगन, मेहनत, प्रतिबद्धता और कार्य के प्रति सतत् जिज्ञासा का सबसे बड़ा योगदान है।

केदारखंड के प्रागैतिहासिक तथा आद्यैतिहासिक काल अध्याय में स्पष्ट किया गया है कि पुरातत्वीय प्रमाणों के आधार पर मध्य हिमालय के उत्तराखंड भू-भाग में भी प्रागैतिहासिक तथा आद्यैतिहासिक मानव की गतिविधियों के कुछ प्रमाण मिले हैं जिन्हें चार मुख्य वर्गों में बांटा गया है। गुहा चित्रों तथा शैलाश्रयों की खोज के अलावा कई अन्य प्रमाण इसकी पुष्टि करते हैं। गढ़वाल में बौद्ध धर्म तथा उसके बाद सनातन धर्म की स्थापना का भी विस्तार से वर्णन किया गया है।

'केदारखंड : गढ़वाल की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, अध्याय में लेखिका ने यहां यक्ष, गंधर्व, कुमाऊं और नाग जातियों की सृष्टि, महाभारत काल, किरात, खस आदि विभिन्न संस्कृतियों का उल्लेख किया है। पंद्रहवीं शताब्दी के बाद परमार (पंवार) वंश का उद्भव हुआ और 1804 ई. तक अविभाजित गढ़वाल पर पंवार वंशीय राजाओं का आधिपत्य रहा। गोरखों के आक्रमण ने इस एकाधिकार को ध्वस्त कर दिया। उसके बाद गढ़वाल में ब्रिटिश राज और टिहरी रियासत तथा आज़ादी के बाद नये जिलों का गठन आदि की जानकारी दी गई है।

'वास्तुकला एक विवेचन' अध्याय में लेखिका ने प्रागैतिहासिक युग से प्रारंभ वास्तुकला का विभिन्न लेखकों एवं पुराविदों की खोजों से प्राप्त अवशेषों, शैलाश्रयों, गुहाचित्रों के आधार पर विवेचन किया है। प्रारंभिक ऐतिहासिक काल के धार्मिक स्थापत्य का सर्वप्रथम प्राप्त उदाहरण देहरादून के बाड़वाला स्थित अश्वमेध चित्तियां हैं जहां उत्खनन से पता चलता है कि यहां तृतीय शती में शीलवर्मन नामक नृपति ने कम-से-कम चार अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया था। पुस्तक में वास्तुशास्त्र विषयक ग्रंथों के माध्यम से वास्तुकला के क्रमिक विकास की जानकारी दी गई है।

'प्रतिमा विज्ञान' अध्याय में बताया गया है कि हिमालय में प्रतिमाओं के अस्तित्व के प्रमाण प्रथम-द्वितीय शती से मिलने लगते है। प्रारंभ में यहां मिट्टी एवं काष्ठ प्रतिमाओं का निर्माण किया गया। कालांतर में धातु एवं पाषाण प्रतिमाओं का प्रचलन हुआ। विभिन्न देवताओं की प्रतिमाओं, भौगलिक प्रतीकों, ईशा, यक्ष-यक्षिणी, नाग-नागिन, बौद्ध प्रतिमाओं, कुंड, जलाशय, वीर स्तंभ एवं बौद्ध स्तूप के बारे में जानकारी देकर प्रतिमा विज्ञान का विस्तार से उल्लेख किया है।

पुस्तक में पंच केदार, सप्तबदरी तथा मंदिर वास्तुकला के अंतर्गत मध्य हिमाद्रि शैली के अंतर्गत छत्र रेखा प्रसाद एवं यामुन प्रसाद, प्रतिमा विज्ञान आदि के रंगीन चित्र दिए गए हैं। सभी सात जिलों के प्रमुख मंदिरों एवं दर्शनीय स्थलों का चित्रों समेत विस्तार से विवरण दिया गया है। जिला मुख्यालयों को केंद्र बनाकर उन स्थलों की दूरी भी दी गई है जिससे तीर्थ यात्रियों एवं पर्यटकों को वहां तक पहुंचने में आसानी हो।

'लोकदेवता' अध्याय के अंतर्गत गढ़वाल मंडल के लोक देवता में उन सभी स्थानीय लोकदेवताओं के बारे में जानकारी दी गई है जिनमें से कई का प्रभाव बहुत ही स्थानीय है तो कई का व्यापक।

उत्तराखंड के गढ़वाल-हिमालय के धर्म, संस्कृति, वास्तुशिल्प एवं पर्यटन के बारे में हेमा उनियाल के व्यापक अध्ययन का प्रभाव उनकी पुस्तक *केदारखंड* में स्पष्ट दिखाई देता है। गढ़वाल-हिमालय के बारे में जानने-समझने के लिए यह पुस्तक महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ के रूप में बहुत उपयोगी है। भावी शोधार्थियों तथा राज्य के पर्यटन के बारे में योजना बनाने वालों के लिए भी पुस्तक सहायक सिद्ध होगी। इस तरह की पुस्तकों के पेपरबैक संस्करण आम पाठकों के लिए अधिक उपयोगी हो सकते हैं। ❑

(समीक्षक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

बेहतर गुणवत्ता

ताज़े फलों जैसी ताज़गी, सेहत से भरी प्रोसेस्ड फूड है हर मायने में सही

बेहतर स्वास्थ्य

प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ भरपूर पौष्टिकता के साथ–साथ उत्तम गुणवत्ता युक्त होते हैं। खाद्य प्रसंस्करण प्रक्रिया द्वारा फल, सब्जियों व माँस जैसे खाद्य पदार्थों को प्रसंस्कृत करके कई रुपों में बाजार में पेश किया जाता है।

प्रोसेस्ड फल व सब्जियों वाले खाद्य पदार्थ

पैकेज्ड फूड पैकेट पर अवश्य देखें:

• उत्पादन व समापन की तिथि • आवश्यक सामग्री की सूची • कुल वजन • उत्पादनकर्ता का नाम व पता • हेल्पलाइन नम्बर • अधिकतम खुदरा मूल्य • रंग कोड (शाकाहारी व मांसाहारी) • एफपीओ लाइसेन्स/एमएफपीओ लाइसेन्स

प्रोसेस्ड फूड को तैयार करते समय निम्न बातों का ध्यान रखा जाता है

• स्वास्थ्य मापदंड पर जांचा हुआ • जांची हुई गुणवत्ता • जांचा हुआ प्रिजेवेटिव • स्वास्थ्यकर परिवेश • अपमिश्रण • लंबी अवधि तक उपयोग • सुविधाजनक • हाथों का उपयोग नहीं • गुणवत्ता उत्पाद • स्वादिष्ट

सत्यमेव जयते

MOFPI

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय
(भारत सरकार)
पंचशील भवन, अगस्त क्रान्ति मार्ग, नई दिल्ली–110049
Website: www.mofpi.nic.in

davp 16101/13/0002/1112

YH-17/2011

स्वास्थ्य व शुद्धता की कसोटी पर खरा–जीवन खुशियों से भरा

प्रकाशक व मुद्रक अरविंद मंजीत सिंह, अपर महानिदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, ई-46/11, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-2, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। वरिष्ठ संपादक : राकेशरेणु

Licenced under U (DN)-53/09-11
आर.एन.आई. 951/57
R.N.I. 951/57

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2009-11 तथा डाक व्यय की पूर्व अदायगी के बिना डाक में डालने के लिए लाइसेंस-प्राप्त
Reg. No. D.L.(S)-05/3231/2009-11 Licenced to post without pre-payment at RMS, Delhi
26 अप्रैल, 2011 को प्रकाशित • 29-30 अप्रैल, 2011 को डाक द्वारा जारी

Just Released

पिछले वर्ष के हल प्रश्न-पत्रों सहित

Code 589 ₹ 315/-

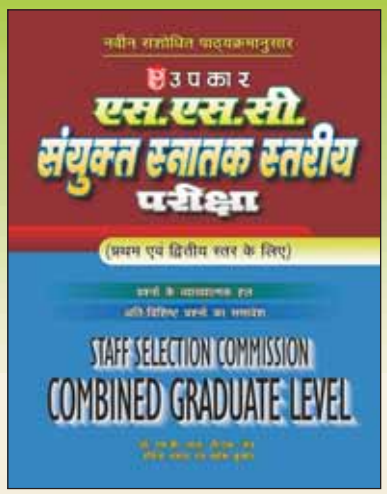

Code 590 ₹ 440/-

एस.एस.सी.
संयुक्त स्नातक स्तरीय
परीक्षा
(प्रथम एवं द्वितीय स्तर के लिए)

Code 597 ₹ 155/-

❖ उपकार की पुस्तकें ❖

Code 490 ₹ 455/-

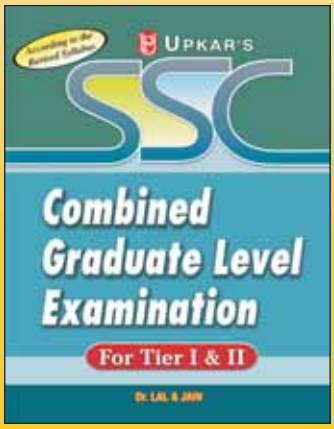

Code 489 ₹ 299/-

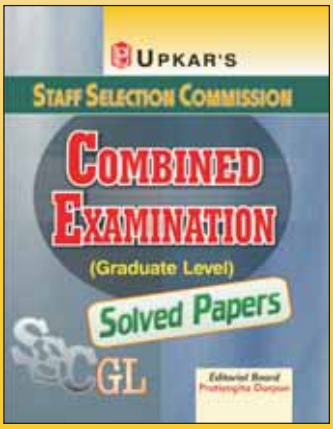

Code 1505 ₹ 160/-

उपकार प्रकाशन
(An ISO 9001:2000 Company)
2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा–282 002 फोन : 4053333, 2531101, 2530966; फैक्स : (0562) 4053330
Website : www.upkar.in E-mail : care@upkar.in
ब्रांच ऑफिस : • नई दिल्ली फोन : 23251844/66 • हैदराबाद फोन : 66753330

YH-14/2011